सूचीपत्र

—:०:—

हिंदी शिक्षावली

चौथा भाग

पाठ १

भूडोल

ईश्वर ने जितने पदार्थ इस पृथिवी पर बनाये हैं वे किसी न किसी प्रकार से मनुष्य के लिये उपयोगी हैं। कोई कोई वस्तुएँ ऐसी भी हैं, जैसे भूडोल, जिनसे हानि ही समझी जाती है। भूडोल, भूचाल या भूकम्प भूमि अर्थात् पृथिवी के एकाएक हिलने को कहते हैं। साधारण मनुष्य कब यह सोच सकते हैं कि भूडोल से लाभ भी होता होगा। यह उनकी बड़ी भूल है। भूडोल से पृथिवी को बड़े लाभ हैं।

समुद्र की लहरों से सदा किनारे की धरती कटती रहती है। नदियाँ बहुत सी मिट्टी बहा ले जाती हैं। बरसात के पानी से भी बहुत सी मिट्टी बह जाती है। स्टुअर्ट साहिब लिखते हैं कि यह कमी विशेष कर भूडोल और ज्वालामुखी पहाड़ों से पूरी हो जाती है। यदि ऐसा न होता तो पृथिवी मिटते मिटते नष्ट हो जाती।

साधारण भूडोल में घर और वस्तुएँ हिलने लगती हैं, परन्तु बड़े बड़े भूकम्पों में पृथिवी ठौर ठौर फट जाती है जिसमें बड़े बड़े

नगर बात की बात में समा जाते हैं; पुराने टापू लोप हो जाते हैं और नये बन जाते हैं। नदियाँ इधर की उधर बहने लगती हैं; समुद्र का पानी पृथिवी पर फैल जाता है और बड़ी हानि होती है। ईश्वर को धन्यवाद देना चाहिए कि ऐसे बड़े भूडोल बहुत कम आते हैं।

सन् १७६५ ईसवी में शहर लिस्बन में ऐसा भूडोल आया कि जैसा आज तक सुनने में नहीं आया। छः मिनट में ६० हज़ार मनुष्य मर गये; समुद्र का पानी बढ़ कर सोलह गज़ किनारे से ऊँचा चढ़ आया; पहाड़ गिर पड़े; समुद्र के किनारे एक मकान, जो बटोहियों के लिए बचाव का स्थान था, पृथिवी में धँस गया और उसमें ठहरे हुए हज़ारों मनुष्य मर गये।

सन् १८६७ ईसवी में हिन्दुस्तान में भी एक बड़ा भूडोल आया था। वह उत्तरी भाग में पेशावर से लेकर आसाम तक लग भग सब स्थानों में जान पड़ा था। परन्तु विशेष हानि बंगाल और आसाम को छोड़ कर और कहीं नहीं हुई। आसाम में बहुत जगह धरती फट गई और कलकत्ता नगर में कई बड़े बड़े मकान बात की बात में मिट्टी में मिल गये।

भूडोल से लाभ भी होता है। सन् १८५३ ईसवी में चिली देश के किनारे पर एक भारी भूकम्प आया। दूसरे दिन यह देखा गया कि वहाँ की पृथिवी आठ दस फुट ऊँची हो गई; एक चट्टान पानी से बाहर निकल आई और आस पास के समुद्र की गहराई नौ फुट कम हो गई।

सन् १८२२ ईसवी में जो भूकम्प चिली में आया था उसके

कारण दक्षिणी अमेरिका में, जो भूडोलों के लिये विख्यात है, पचास कोस चौड़ा स्थल का नया भाग निकल आया। भूकम्प के कारण जो धरती नई निकल आती है वह सैकड़ों बरस की कमी और हानि को पूरा कर देती है।

अब हम विचार कर सकते हैं कि जब भूडोल से पृथिवी बनती जाती है और उसकी कमी पूरी होती है तो लाभ की अपेक्षा नगरों के नाश हो जाने की हानि बहुत कम है। अन्त में यही कहना पड़ता है कि ईश्वर जो कुछ करता है सब भला ही करता है।

पाठ २

गैंडा

पहिले हिन्दुस्तान में यह जन्तु पश्चिमोत्तर देश के जङ्गलों में और सिन्ध नदी के किनारे मिला करता था, पर अब केवल हिमालय की तराई में नैपाल से भूटान तक पाया जाता है। गैंडा भद्दा और बेडौल होता है। नाक से पूँछ के सिरे तक उसकी लम्बाई अटकल से नौ दस फुट और ऊँचाई पाँच फुट तक होती है। उस की देह की मोटाई का घेर लंबाई के बराबर होता है। कोई कोई गैंडा बारह फुट तक लंबा होता है। गैंडे का सिर बड़ा और कान नोकदार और खड़े होते हैं; आँखें छोटी छोटी और आधी बन्द रहती हैं। इसकी निगाह तेज़ नहीं होती; पास की वस्तु भी अच्छी तरह नहीं देख सकता; हाँ शब्द सुन लेता है। आदमी

और जानवरों को उनकी बास से पहिचान लेता है और जब तक वह निकल नहीं जाते पेड़ों की आड़ में छिपा खड़ा रहता है। इसकी नाक से कुछ ऊपर एक ठोस नोकदार और मुड़ा हुआ सींग होता है। यह सींग जड़ के पास जितना घेर में रहता है उतना ही लंबा होता है। कभी कभी दो फुट तक लंबा हो जाता है। इसकी टाँगें छोटी छोटी, मोटी और पोढ़ी होती हैं और एक एक पाँव में तीन तीन बड़े बड़े खुर होते हैं। इसकी पूँछ पतली और सिरे पर चपटी होती है और उसके दोनों ओर काले बाल होते हैं। ऊपर का होठ (ओठ) लचकदार और ऊपर को निकला हुआ होता है और अच्छी तरह मुड़ सकता है। इसका रंग ख़ाकी भूरा सा होता है। खाल कड़ी और डेढ़ इंच तक मोटी होती है। तलवार की धार और सीसे की गोली उस पर कुछ असर नहीं कर सकती, इसलिए इसको लोहे की गोली से मारते हैं। इसकी खाल पर दाने होते हैं और हर एक दाना पैसे के बराबर चौड़ा होता है। गैंडे की खाल की ढालें बहुत अच्छी बनती हैं। गैंडा घास के जंगलों में रहा करता है और नदियों के किनारे कीचड़ में लोटने और पानी में नहाने से प्रसन्न रहता है। वह बहुत धीरे धीरे चलता है और किसी को नहीं सताता। हाँ जो कोई इसको छेड़े तो उस पर पिल पड़ता है, यहाँ तक कि सिंह को भी मार लेता है, क्योंकि वह अपने पंजों से उसका कुछ भी नहीं कर सकता। लोग कहते हैं कि सिंह उछल कर गैंडे की पीठ पर चढ़ बैठता है, तब गैंडा अपना शरीर इतने वेग से हिलाता है कि सिंह नीचे गिर पड़ता है। इसी रीति से सिंह को गिरा गिरा

कर हरा देता है और जब वह थक जाता है उसे सहज में मार लेता है।

पाठ ३

पीटर

यों तो रूस सदा से बड़ा भारी राज है, पर इस शताब्दी से पूर्व तक इसकी जो कुछ उन्नति है उसका बीज पीटर ने बोया था। पीटर देश-हितैषी और प्रजा-हितकारी राजाओं में शिरोमणि था और इसी कारण उसको "पीटर दि ग्रेट" (महान पीटर) कहते हैं। पीटर का जन्म १६७१ ईसवी में हुआ और वह दस ही बरस की अवस्था में राजसिंहासन पर बैठा। उसने देखा कि यूरुप में जितने देश हैं सबमें नई नई कलाओं का प्रचार हो गया है पर रूसवाले असभ्य ही बने हैं। इसलिए रूसियों में सभ्यता फैलाने के लिये उसने परिश्रम करना स्वीकार किया और हालैंड और इँगलिस्तान में जाकर साधारण बढ़ई और लोहारों की तरह काम सीखा। दिन को कुली का काम करता और रात को राज काज देखता था। जब सब सीख और देख भाल लिया तब ७०० कारीगर लेकर अपने देश को लौटा और रूसियों को जहाज़ बनाना सिखाया। पीटर के समय में बारहवाँ चार्ल्स स्वीडन का राजा बड़ा प्रतापी और बलवान् था। एक बार चार्ल्स ने ८ हज़ार सिपाही लेकर ६३ हज़ार रूसी सिपाहियों समेत पीटर को हराया। बुद्धिमान् पीटर बोला, स्वीडनवाले हम को कई बार हरायेंगे, पर

अन्त में हमें सिखा देंगे कि वे आप कैसे हराये जा सकते हैं। पीटर ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की और नौ बरस पीछे पल्टोआ के मैदान में चार्ल्स को हरा कर किसी काम का न रक्खा। पहिले रूस की राजधानी मास्को थी जो अब भी बड़ा नगर है, पर पीटर ने अपने नाम का नगर सेंटपीटर्सबर्ग—बाल्टिक समुद्र के निकट बसाकर राजधानी बनाया और उसे पुस्तकालय, अस्पताल, अजायबघर और पाठशालाओं से भूषित किया। सन् १९१४ में जब इँगलेंड का जर्मनी से युद्ध छिड़ा तब से सेंटपीटर्सबर्ग के बदले पीट्रोग्राड नाम रख दिया गया है। पीटर प्रजा का बड़ा हितैषी था। गाँववालों से उनकी खेती बारी का हाल पूँछा करता और उन्हें काम की बातें बताता रहता था। रूसवाले पीटर को आज तक देवता की तरह स्मरण करते हैं।

पीटर ५३ बरस की अवस्था में अपने राज की नींव स्थिर और प्रबन्ध अचल करके १७२४ ईसवी में परलोक सिधारा।

पाठ ४

हरिश्चन्द का जीवनचरित्र

(प्रेमसागर से)

किसी समय हरिश्चन्द बड़ा दानी हो गया है जिसकी कीर्त्ति संसार में अब तक छा रही है। सुनिये, एक समय राजा हरिश्चन्द के देश में अकाल पड़ा और अन्न बिना सब लोग मरने

लगे। तब राजा ने अपना सर्वस्व बेंच सबको खिलाया। जब देश, नगर, धन गया और निर्धन हो राजा रहा, तब एक दिन साँझ समय यह तो कुटुम्ब समेत भूखा बैठा था कि इतने में विश्वामित्र ने आय इनका सत्य देखने को यह वचन कहा—"महाराज, मुझे धन दीजै और कन्यादान का फल लीजै"। इस वचन के सुनते ही जो कुछ घर में था सो ला दिया। पुनि ऋषि ने कहा, "महाराज, मेरा काम इतने में न होगा"। फिर राजा ने दास दासी बेच धन ला दिया और धन जन गवाँय, निर्धन निर्जन हो, स्त्री पुत्र को ले रहा। पुनि ऋषि ने कहा, "धर्म्ममूर्त्ति ! इतने धन से मेरा काम न सरा। अब मैं किसके पास जाय माँगूँ, मुझे तो संसार में तुम से अधिक धनवान्, धर्मात्मा, दानी कोई नहीं दृष्टि आता है; एक श्वपच अर्थात् चांडाल मायापात्र है; कहो तो उससे जा धन माँगूँ पर इसमें भी लाज आती है कि ऐसे दानी राजा को याच उससे क्या याचूँ"। महाराज ! इतनी बात के सुनते ही राजा हरिश्चन्द्र विश्वामित्र को साथ ले उस चांडाल के घर गये और इन्होंने उससे कहा, "भाई ! तू हमें एक बरस के लिये गहने धर और इनका मनोरथ पूरा कर"। श्वपच बोला—

"कैसे टहल हमारी करिहौ। राजस तामस मन ते हरिहौ॥
तुम नृप महा तेज बलधारी। नीच टहल है खरी हमारी"॥

"महाराज हमारे तो यही काम है कि श्मशान में जाय चौकी दे और जो मृतक आवे उससे कर ले, पुनि हमारे घर बार की चौकसी करे। तुम से यह हो सके तो मैं रुपये दूँ और तुम्हें बंधक

रक्खूँ"। राजा ने कहा, "अच्छा मैं बरस भर तुम्हारी सेवा करूँगा, तुम इन्हें रुपये दो"। महाराज ! इतना वचन राजा के मुख से निकलते ही श्वपच ने विश्वामित्र को रुपये गिन दिये। वह ले अपने घर गये और राजा वहाँ रह उसकी सेवा करने लगा। कितने एक दिन पीछे कालवश हो राजा हरिश्चन्द का पुत्र रोहिताश्व मर गया। उस मृतक को ले रानी मरघट में गई और ज्यों चिता बनाय अग्नि-संस्कार करने लगी त्यों ही राजा ने आय कर माँगा।

रानी बिलखि कहै दुख पाय। देखहु समझ हिये तुम राय॥

"यह तुम्हारा पुत्र रोहिताश्व है, और कर देने को मेरे पास और तो कुछ नहीं, एक यह चीर है जो पहिरे खड़ी हूँ"। राजा ने कहा, "मेरा इसमें कुछ वस नहीं; मैं स्वामी के कार्य्य पर खड़ा हूँ; जो स्वामी का कार्य्य न करूँ तो मेरा सत्य जाय"। महाराज ! इस बात के सुनते ही रानी ने चीर उतारने को जो आँचल पर हाथ डाला तो तीनों लोक काँप उठे। योंही भगवान् ने राजा रानी का सत्य देख पहिले एक विमान भेज दिया और पीछे से आय दर्शन दे तीनों का उद्धार किया। महाराज ! जब विधाता ने रोहिताश्व को जिवाय राजा रानी को पुत्र समेत विमान पर बैठाय वैकुण्ठ जाने की आज्ञा की, तब राजा हरिश्चन्द ने हाथ जोड़ भगवान् से कहा, "हे दीनबन्धु ! पतितपावन ! दीनदयाल ! मैं श्वपच बिना वैकुण्ठ धाम कैसे जा करूँ विश्राम" इतना वचन सुन और राजा के मन का अभिप्राय जान श्रीभक्तहितकारी करुणासिन्धु हरि ने पुरी समेत श्वपच को राजा, रानी और कुँवर के साथ तारा।

पाठ ५

राजा और प्रजा

देखो, तुम्हारे दर्जे में पचीस तीस लड़के हैं, बहुतेरे इनमें सज्जन और सीधे हैं जो औरों के साथ मिल जुल कर रहते हैं, पर कोई कोई दुष्ट-स्वभाव भी हैं जो अपनी दुष्टता से अपने साथियों को दुख देते हैं। यदि तुम सब एक स्थान में मिल कर बैठो और आपस में एक होकर एक लड़के को चुन लो या तुम्हारे गुरुजी तुम में से किसी लड़के को चुन दें कि तुम्हारे झगड़े निपटा दिया करे, जो दरजे में दूसरों को क्लेश पहुँचायें उनको दंड दिया करे, और दर्जे में का प्रबन्ध रक्खे तो उसको पाठशाला की बोल चाल में मानीटर (Monitor) कहेंगे पर यथार्थ में वही तुम्हारा राजा होगा। इतना निस्संदेह अंतर होगा कि उसका अधिकार पाठशाला के छोटे से कमरे में दर्जे के बीस पचीस लड़कों पर रहेगा और राजा का अधिकार बड़े बड़े देशों और लाखों करोड़ों मनुष्यों पर होता है।

पहिले हर एक घराने का बड़ा बूढ़ा उस घराने का शासनकर्त्ता होता था और वही सब बातों का प्रबन्ध करता था। परन्तु जैसे जैसे संतान की बढ़ती होती गई तैसे तैसे एक एक घराने के कई कई घराने होते गये; और उनके अलग अलग मुखिया बनते गये। बहुत से घराने मिल कर एक जाति (क़ौम) बन जाती है इसी रीति से धीरे धीरे बहुत सी जातें बन गईं, और ज्यों ज्यों घराने के प्रबन्ध के लिए शासन करनेवालों की आवश्यकता होती गई त्यों त्यों इन जातों के प्रबन्ध के लिए भी शासन करनेवालों की

आवश्यकता बढ़ती गई। ऐसे ही राजा या बादशाह बने और इनका घराना औरों की अपेक्षा अधिक बलवान होने के कारण उनके मरने के पीछे उन्हीं की सन्तान ने उनका पद पाया। योंही संसार में राजा के अधिकार की जड़ जमी, परन्तु जैसे जैसे समय बीतता गया, प्रत्येक जाति में शासन करने की रीति बदलती गई।

इन दिनों किसी किसी देश में बादशाह स्वतन्त्र होता है, अर्थात् राज-कामों में जो चाहता है सो कर सकता है, कोई पूछ नहीं सकता कि क्या करते हो। ईरान, रूम और अफ़ग़ानिस्तान में शासन करने की यही रीति अब तक प्रचलित है।

किसी किसी देश जैसे ग्रेट ब्रिटन में बादशाह का पूरा अधिकार नहीं होता। उसको रोकने के लिए एक सभा रहती है जिसमें प्रजा के चुने हुए सभासद् और प्रजा के प्रधान पुरुष रहते हैं। इनकी सम्मति के बिना राजा को राज के किसी काम के करने का अधिकार नहीं है।

किसी किसी देश में राजा होता ही नहीं। प्रजा ही ने राजकाज का भार अपने ऊपर ले लिया है। शहर शहर, क़स्बा क़स्बा और गाँव गाँव मनुष्य एकत्र होकर एक एक वा एक एक से अधिक मनुष्यों को अपनी ओर से चुन लेते हैं और ये सब चुने हुए मनुष्य पंचायत में इकट्ठे होकर एक बरस या अधिक समय के लिये एक मनुष्य को अपना प्रधान या सभापति नियत कर लेते हैं और सब मिल कर देश का प्रबंध करते हैं। ऐसा राज फ़्रांस, संयुक्त अमरीका और स्विटज़रलैंड में है।

जैसे राजा का कर्तव्य है कि प्रजा के धन और प्राण की रक्षा

करे, वैसे ही प्रजा का यह धर्म है कि राजा के नियमों के अनुसार चले और उसकी आज्ञा पालन करे। राज के शुभचिन्तकों का सदा मान होता है। तुमने देखा होगा कि जो मनुष्य सर्कार अँगरेज़ी के शुभचिन्तक हैं उनको सर्कार की ओर से बड़े बड़े उच्च पद, जागीरें और उपाधियाँ मिली हैं।

पाठ ६

ताज वीबी का रौज़ा

महाभारत के अन्त में जब राजा धृतराष्ट्र अपने बेटों के सोच में व्याकुल बैठे थे तब संजय ने काल की महिमा के बखान में कहा था—

"सिरजत काल सकल संसारा। करत काल सब लोक सँहारा।
सब सोवत जागत तब सोई। काल समान बली नहिं कोई॥"

बड़े बड़े वीरों, बड़े बड़े तेजधारियों के नाम काल ने पानी की लकीर की तरह मिटा दिये। भगवान् की महिमा देखना चाहिये कि मनुष्य संसार की अनित्यता देखते जाते हैं, पर अमर होने की चाह बनी हुई है। हाड़ मांस के शरीर से तो अमर रहने की इच्छा मात्र ही जड़ता का लक्षण है, इस कारण मरने के पीछे नाम रहने का उपाय किया जाता है। इसी प्रयोजन से बाग़, पुल, ताल, महल आदि बनाये जाते हैं। इसी प्रकार की वस्तुओं में आगरे में ताज़ बीबी का रौज़ा सबसे बढ़ कर है। इसको शाहजहाँ बादशाह ने अपनी प्यारी बेगम अर्जुमंद बानू

के स्मरण के अर्थ उसके मरने के पीछे बनवाया था। अर्जुमंद बानू का उपनाम मुमताज़ महल था, इसी से इस रौज़े को ताज बीबी का रौज़ा कहते हैं। अरबी भाषा में रौज़ा उपवन को कहते हैं। मुसलमान बहुधा मरने के पीछे उपवन ही में गाड़े जाते हैं, इसी से अब बोल चाल में रौज़ा उस मंडप को कहते हैं जिसमें किसी प्रसिद्ध पुरुष की क़बर हो। बेगम दक्खिन में मरी थीं और वहीं गाड़ी गई थीं। जब यह रौज़ा बन कर तैयार हो गया तो उनकी हड्डियाँ यहाँ लाई गईं और एक सुन्दर क़बर में रक्खी गईं। मरने के पीछे शाहजहाँ बादशाह की भी क़बर उसी के बराबर बनाई गई।

यह रौज़ा आगरे से कोस भर पूरब यमुना नदी के दाहिने किनारे पर बना हुआ है और इसकी शोभा के विचार से इसे मंडपों का सिरताज कहने से अत्युक्ति न होगी। इसके विशाल फाटक में घुसते ही एक बड़ा रमणीय उपवन है और उपवन के एक ओर यह अद्भुत मंडप जयपुर के अच्छे से अच्छे संगमर्मर का बना हुआ है। चारों कोनों पर चार बड़ी बड़ी मीनारें हैं जिन के भीतर पेचदार सीढ़ियाँ बनी हुई हैं।

चौतरे पर चढ़ते हुए एक सुन्दर फाटक देख पड़ता है जिस के चारों ओर पच्चीकारी के काम में कुरान की आयतें लिखी हैं। भीतर जाते ही एक ज़ीना नीचे के खंड को जाता है। वहीं संग-मर्मर की जालियों के बीच जिनमें रंग रंग के सच्चे नगों से पच्ची-कारी के बेल बूटे बने हुए हैं, दोनों क़बरें हैं। क़बरों पर बहुत बढ़िया काम बना हुआ है। ऊपर के खंड में इसका जवाब है,

अर्थात् ऐसी ही जाली और क़बरें नीचे की क़बरों के ठीक ऊपर बनी हुई हैं। इस रौज़े के बनाने को देश देश के कारीगर बुलाये गये थे और बीस हज़ार मनुष्यों ने आठ बरस में इसको बनाया था।

लोग कहते हैं कि शाहजहाँ की इच्छा थी कि उसके मरने के पीछे उसके लिये भी यमुना के दूसरे तट पर ऐसा ही रौज़ा बनाया जाय, परन्तु जब औरंगज़ेब से यह बात कही गई तो उसने धूर्तता से जवाब दिया कि हमारे माता पिता चकवा चकई नहीं हैं कि एक नदी के इस पार रहे और दूसरा उस पार। यह कह कर उसने ताज़ बीबी के पास ही शाहजहाँ को भी गड़वा दिया।

पाठ ७

धुएँ की कल और रेल

हम लोग लड़कपन से कहानियों में पढ़ते आये हैं कि देवता के प्रसाद अथवा मंत्र और माया के बल से अग्नि, पवन के विमान और उड़न-खटोले बनाये जाते थे, जिन पर बैठ कर लोग महीनों की राह घंटों में काटते थे। उन कहानियों के लिखनेवाले कब जानते थे कि आज कल यूरप के विद्वान् अपनी चतुराई से ऐसा विमान निकालेंगे जिसके आगे निशाचरों की माया भी चकित सी खड़ी रह जायगी। लोग कहते हैं कि सबसे पहिले फ़्रांस के एक विद्वान ने पानी की भाप के बल से पहिया घुमाने की रीति निकाली। इसके पीछे पत्थर के कोयले की खानों से, जो धरती

में बहुत गहरी खोदी जाती हैं, पानी निकालने के लिये एक छोटा सा एंजिन बनाया गया। वाट साहिब की चतुराई से पुराने एंजिनों के दोष दूर होकर बड़े बड़े एंजिन बने, पर यह सब एंजिन एक ठिकाने पर गड़े रहते थे। सन् १८३० ई० में एक छोटा सा चलता एंजिन बनाया गया; जो थोड़ी दूर तक धीरे धीरे लोहे की सड़क पर कोयले की गाड़ियाँ खींचा करता था। बढ़ते बढ़ते अब यहाँ तक उन्नति हुई कि पचास पचास गाड़ियों को एक ही एंजिन लोहे की पटरी पर घंटे में ३० कोस तक खींच ले जाता है। लोहे की पटरियों का प्रयोजन तो जानते हो, इससे गाड़ियाँ सहज ही थोड़े सहारे में ढुलकती चली जाती हैं।

रेल के एंजिन की बनावट बड़ी पेचदार है, पर पहियों का चलना सहज ही समझ में आ सकता है। तुमने देखा होगा कि पतीली में जब पानी गरम करते हैं या खाना पकाते हैं और पतीली को कटोरे से बंद करते हैं तो भाप के बल से कटोरा ऊपर को उछलने लगता है। भाप के इसी गुण को रेल के काम में लाते हैं। एक बड़े बरतन में जिसको बायलर कहते हैं, जो एंजिन के आगे ढोल सा बना रहता है, पानी गरम करते हैं और गरम भाप नलियों के द्वारा गाड़ी के दोनों ओर दो बड़ी बड़ी पिचकारी के आकार की पेटियों में ले जाते हैं जिसमें दो डट्टे लोहे की बड़ी बड़ी मोटी छड़ों में जड़े हुए आगे पीछे सरकते हैं। इन डट्टों का एक सिरा पहिए में केन्द्र से कुछ हट कर जड़ा रहता है। अब कारीगरी यह है कि डट्टा पिचकारी में भाप के बल से जब पेटी के एक छोर तक पहुँच गया तब वह भाप बाहर निकल

जाती है और दूसरी ओर से भाप निकल कर डट्टे को चलाती है। इसी रीति से डट्टा आगे पीछे सरकता है और पहिया घूमता हुआ आगे को बढ़ता है। यूरप में आज कल सारे काम एंजिन से लिये जाते हैं। एंजिन से रुई धुनते, सूत कातते, कपड़ा बुनते, कलप करते, जूता बनाते, आटा पीसते, सुरखी कूटते, रस्सी बटते, काग़ज़ छापते, लकड़ी चीरते, और लोहे के पेंच काटते हैं। धुएँ की ऐसी कलें कलकत्ता, बम्बई और हमारे पश्चिमोत्तर देश में कानपुर आदि में चलती हैं।

पाठ ८

गौतम बुद्ध

हिन्दू बुद्ध को विष्णु का नवाँ अवतार मानते हैं, पर आज कल उनके विषय में वे यह कहते हैं कि यह अवतार लोगों को धर्म के विरुद्ध चलाने के निमित्त हुआ था। जयदेवजी ने अपने गीतगोविन्द में बुद्ध के विषय में यह लिखा है कि इस रूप में भगवान् ने लोगों को करुणा सिखाई। दो हज़ार बरस पहिले बुद्धजी का मत हमारे देश में प्रचलित था। अब भी चीन, जापान, ब्रह्मा, स्याम आदि देशों में यही मत विशेष कर माना जाता है। करोड़ों मनुष्य "बुद्धा मे शरणम्" अर्थात् बुद्ध जी हमारी रक्षा करें, सोते जागते अपने मुख से अनेक़ बार कहते हैं और आज दिन जितने इस मत के माननेवाले हैं उतने किसी दूसरे के नहीं।

बुद्धजी का जन्म ईसा से ५४३ बरस पहिले कपिलवस्तु नगर

में, जिसके खँडहर गोरखपुर के उत्तर नैपाल की तराई में बताये जाते हैं, हुआ था। उनके पिता महाराज शुद्धोदन शाक्यवंश के राजा थे। बुद्धजी का नाम पहिले गौतम और सिद्धार्थ भी था। बुद्धजी छोटे ही थे जब इनकी माता मायादेवी का स्वर्गवास हुआ। इनकी मौसी गौतमी ने इनको पाला और सारी विद्या पढ़ाई। राजा शुद्धोदन तो चाहते ही थे कि मेरा लड़का अस्त्र शस्त्र चलाने में चतुर हो, उन्होंने उनको पूरी शिक्षा दी; पर बुद्धजी का चित्त खेल-कूद में न लगता था। राजभवन में एकान्त में बैठे सोचा करते थे। जवान हुए तो एक बार राजा दंडपाणि की कन्या के स्वयंवर में गये। वहाँ इनका अस्त्र चलाना और बल-पौरुष सबसे बढ़ कर ठहरा और अंत में राजा ने प्रसन्न होकर अपनी कन्या इनको व्याह दी।

बहुत दिनों तक राज का सुख भोगते रहे, पर मन में यही विचारते रहे कि संसार असार है, मनुष्य के जीवन का कुछ ठिकाना नहीं। दस बरस तक यों ही बीत गये और एक लड़का भी हो गया। उस समय बुद्धजी ने यह विचारा कि कहीं ऐसा न हो कि यह नया बंधन संसार में मुझे जकड़ दे। यह सोच वह एक दिन रात को, जब सब लोग सोते थे, घोड़े पर सवार हो रातों रात अपने राज्य के बाहर चले गये। सबेरा होते ही उन्होंने अपना घोड़ा सेवक को दे उसे लौटा दिया, अपने बाल काट डाले, अपने राजसी वस्त्र एक पथिक के चिथड़ों से बदल लिये और धर्म और संसार के परित्राण के विचार में जंगलों की राह ली।

एक बार फिरते फिरते राजगृह (पटना) पहुँचे। वहाँ राजा बिम्बसार उनसे मिलने को आये और बहुत सा धन देने

लगे। बुद्धजी ने कहा, मुझे धन की चाह नहीं है, मैंने ज्ञान के लिए घर बार छोड़ा है। इसके पीछे बुद्धजी ने गयाजी के समीपवर्ती प्रसिद्ध पंडितों से छहों शास्त्र सीखे, पर इससे भी भ्रम न गया। तब पाँच विद्यार्थियों के साथ वन में कड़ी तपस्या की; इससे भी संतोष न हुआ; वरन यह निश्चय हो गया कि शरीर दुर्बल होने से बुद्धि भी क्षीण हो जाती है। बुद्धजी का चित्त चलायमान देख कर विद्यार्थियों ने उनका साथ छोड़ दिया। अकेले रहने पर बुद्धजी ने एक दिन एक पीपल के नीचे बैठ कर अपना धर्म निश्चित किया और "बुद्ध" (जागे हुए) की पदवी धारण की। वहाँ से चल कर काशीजी पहुँचे और सारनाथ के पास उन्होंने अपने उपदेश का पहिला व्याख्यान दिया। उसका मूल मंत्र यह था—धर्म का शंख फूँको, धर्म की दुन्दुभी बजाओ, धर्म की ध्वजा उठाओ, धर्म करो धर्म करो। इसके पीछे बुद्धजी चारों ओर घूमते रहे। राजगृह के राजा बिम्बसार भी इन्हीं के शिष्य हो गये और इसी विरोध के कारण उनके पुत्र अजातशत्रु ने उनको मार डाला; पर कुछ दिन पीछे घूमते फिरते जब बुद्धजी फिर राजगृह आये तो अजातशत्रु भी उन्हीं की शरण आ गया। इसी प्रकार बुद्धजी कर्म का उपदेश करते रहे और सहस्रों मनुष्यों ने उनका मत स्वीकार किया। ८० बरस की अवस्था में यह महापुरुष कुशीनार स्थान में परलोक सिधारे। बौद्धमत में करुणा करना मुख्य धर्म है। जीव-हिंसा से बढ़ कर दूसरा पाप नहीं।

पाठ ६

गुब्बारा।

हमारे देश में धनी लोग अपने लड़कों के व्याह में गुब्बारे छुड़वाते हैं। यह गुब्बारे बहुत पतले झिल्ली से कागज़ के बने होते हैं। नीचे बाँस का ठाठ लगा रहता है, उसमें तेल में भीगा एक लत्ता बाँध दिया जाता है। आतिशबाज़ पहिले गुब्बारे के ऊपर का सिरा पकड़ कर उसे आँच के ऊपर लटकाता है, लत्ता जल उठता है और गुब्बारा जो पहिले सिकुड़ा रहता है फूल जाता है। तब आतिशबाज़ उसे छोड़ देता है और वह आकाश में चढ़ जाता है और थोड़ी देर उड़ कर, जब आग बुझने लगती है, नीचे गिर पड़ता है।

तुमने कभी यह भी सोचा है कि इस प्रकार गुब्बारों के उड़ने और गिरने का क्या कारण है? इसको समझने के लिये हम तुमको थोड़ा सा विज्ञान बतावेंगे। तुमने देखा होगा कि जब अलाव जलाया जाता है, आग की लपट के साथ आस पास की हवा भी ऊपर जाती है, और उसके साथ घास और पत्ते भी ऊपर चढ़ते जाते हैं और कुछ दूर ऊपर जाकर गिर पड़ते हैं। इसका कारण यह है कि गरमी पाकर हवा गरम और पतली हो जाती है और पतली होने से हलकी हो ऊपर उठती है। ऐसे ही पानी जब पतीली में गरम किया जाता है और सनसनाने लगता है, तब नीचे का पानी गरम होकर ऊपर आता है और ऊपर का ठंढा पानी नीचे चला जाता है।

देशी गुब्बारों के उड़ने का कारण यही है कि आग जलने से भीतर की हवा गरम होकर पतली हो जाती है। यह हवा आस पास की हवा से हलकी होने के कारण ऊपर चढ़ती जाती है। इसलिए जब तक आग जलती रहती है गुब्बारा ऊपर चढ़ता जाता है।

यदि किसी वस्तु का ऐसा गुब्बारा बनाया जाय जो चारों ओर से बन्द हो और उसमें हवा के सदृश कोई ऐसी वस्तु भरी जाय, जो हवा से हलकी हो तो वह गुब्बारा भी ऊपर उठेगा। यूरप के विद्वान् लोग बड़े बड़े गुब्बारे रेशमी कपड़ों के बनाते हैं और उसमें "कोल-गैस" भर देते हैं। कोल-गैस पत्थर के कोयलों के जलाने से निकलती है और रेलगाड़ी के लम्पों में तेल की जगह जलाई जाती है। यह पदार्थ हवा से बहुत हलका होता है। जितनी हवा का बोझ १४ सेर हो उतनी गैस ९ सेर बैठती है। पर गुब्बारे बहुत बड़े बनाये जाते हैं और इनके नीचे डोरियाँ बाँध कर एक छोटी डोंगी सी लटका देते हैं। उसमें एक या दो मनुष्य बैठ जाते हैं। जब तक गैस भरी जाती और लोग बैठते हैं तब तक गुब्बारे को बड़े बड़े रस्सों से लोग साधे रहते हैं। रस्सा छोड़ते ही गुब्बारा ऊपर उठता है।

गुब्बारों पर बैठ कर लोग २½ कोस तक ऊपर चढ़े हैं। उनसे सुना गया है कि ऊपर की हवा बहुत पतली है। इससे साँस बहुत जल्द जल्द लेनी पड़ती है और नाड़ी तेज़ चलती है। ज्यों ज्यों ऊपर चढ़ते जाते हैं ठंढ बढ़ती जाती है और चारों तरफ़ सन्नाटा

सा प्रतीत होता है। सन् १९१४ वाली यूरप की लड़ाई के समय से अब तो आकाश में बड़े बड़े विमान मज़े में आने जाने लगे हैं।

पाठ १०

कलकत्ता

कालीघाट में कालीजी का एक बहुत प्राचीन मन्दिर है। उस के आस पास की भूमि कालीक्षेत्र के नाम से प्रसिद्ध थी। कालीघाट के मन्दिर के पास एक गाँव भी था जिसका नाम आईन अकबरी में कालीकाता लिखा है। ऐसा जान पड़ता है कि यह नाम कालीजी के मन्दिर के नाम से पड़ा और बिगड़ कर कलकत्ता हो गया।

कलकत्ता अँगरेज़ों के राज से पहिले एक गाँव था। सन् १६८६ ईसवी में "चार्नक" नामी फिरंगी यहाँ आकर बसा। उस समय जहाँ केवल जंगल और दलदल थे, अब वहाँ चमकता दमकता नगर बस गया है। सारे मकान सुडौल, सड़कें चौड़ी, चौक चौड़े, और और रमणीक स्थान ऐसे सुन्दर और विचित्र बने हैं कि इस शहर को "महलों का शहर" कहते हैं। सन् १६९९ ई० में अँगरेज़ों ने यहाँ फ़ोर्टविलियम नामी क़िला बनवाया और सन् १७७३ ईसवी में यह ब्रिटिश इंडिया की राजधानी बनाया गया। यह नगर उत्तर से दक्खिन तक ५ मील लम्बा और पूरब से पश्चिम तक दो मील चौड़ा हुगली नदी के पूरबी तट पर बसा है और इसका क्षेत्रफल ८ वर्गमील है। इसके उत्तर में सर्क्युलर-

रोड और नहर के उस पार लंदन-बाग़, बाहर शिमला, स्यालदह, ऐन्टाली, बेलीगंज और कुछ दूर आगे बढ़ कर चितपुर और दक्खिन में भवानीपुर, अलीपुर और खिदरपुर हैं। हुगली नदी के पश्चिम ओर सालकिया, हौड़ा और शिवपुर हैं जहाँ सरकारी गोदाम, नाव के घाट और अनेक कार्यालयों की कोठियाँ बनी हैं। कलकत्ते के भी बम्बई के समान दो भाग हैं। उत्तरी भाग को हिन्दुस्तानी टोला और दक्खिनी भाग को फिरंगी टोला कहते हैं। दक्खिन से जाते हुए बाईं ओर वनस्पति-वाटिका, गाथिक बिशप कालेज और दाहिनी ओर अति सुन्दर उपवन और अनेक मनोहर भवन तथा गार्डेन-रीच मिलते हैं।

आगे बढ़ कर सरकारी नाव के घाट, शस्त्रालय और चौरंगी हैं। इसके आगे क़िले का मैदान पड़ता है जहाँ सायङ्काल बड़े आदमी हवा खाने आते हैं। कलकत्ते का हाईकोर्ट भी अपनी बनावट और सजावट में अनुपम है। गवर्नर-जेनरल का महल, जिसको मार्क्विस वेलेज़ली ने एक करोड़ रुपये की लागत से बनवाया था, मैदान के उत्तरी सिरे पर है। बीचों बीच नदी के किनारे फ़ोर्टविलियम का क़िला है। यह क़िला हिन्दुस्तान में सबसे बड़ा है और इसके बनाने में दो करोड़ रुपया लगा है। यह क़िला अठपहलू है और इसका व्यास आध मील है। इसकी खाईं में आठ फ़ुट गहरा पानी भर सकते हैं। इस क़िले पर छः सौ से अधिक तोपें चढ़ी हैं और ८० हज़ार छोटे हथियार इसमें रक्खे हैं। क़िले के बाहर उत्तर की ओर नदी के किनारे एक और चौड़ा मैदान दो मील तक चला गया है जिसमें कई घाट बने हैं।

घाटों के सिवा और कई सुन्दर इमारतें जैसे चुङ्गीघर, गोदाम और टकसाल आदि हैं। यहाँ की प्रसिद्ध और देखने योग्य सरकारी इमारतों में हाईकोर्ट, ख़ज़ाना, मेटकाफ़हाल, हिन्दू कालेज, ईसाई कालेज, मुसलमान कालेज, मेडिकल कालेज, बैंक बङ्गाल, युनिवर्सिटी और थीयेटर हैं। इनके सिवाय और कई एक अस्पताल, धर्मशाला, यन्त्रालय और रीडिङ्ग क्लब हैं।

चुङ्गीघर के सामने ५० फुट ऊँची एक लाट बनी है जिस पर उन लोगों के नाम खुदे हैं जो कालकोठरी (ब्लैकहोल) में मरे थे। १५ मील की दूरी से हुगली, नदी का जल नलों के द्वारा सारे नगर में पहुँचाया जाता है। हिन्दुस्तानी आबादी में अनेक मन्दिर, मसजिदें, बाज़ार और दुकानें हैं।

पाठ ११

अतिथि-सत्कार

तीन सौ बरस हुए कि रूस देश में एक बादशाह राज करता था, जिसका नाम ईवान था। वह बहुधा भेष बदल कर अपनी प्रजा की दशा जानने के लिये अकेला नगर में घूमने जाया करता था। एक दिन वह भिखारी का रूप बना कर मास्को नगर के पास के एक गाँव में गया और वहाँ के महाजनों से भीख माँगी। बादशाह ने फटे वस्त्र पहिन कर अपनी ऐसी दीन दशा बना ली थी कि सबको उस पर दया करनी उचित थी, परन्तु किसी ने उसकी बात भी न पूछी। इस निठुर बर्ताव से अति क्रोधित हो

कर बादशाह लौटने ही को था कि उसने एक झोपड़ी देखी जहाँ कि उसने भीख नहीं माँगी थी। यह एक बड़े दरिद्री का घर था। बादशाह ने साँकर खटखटाई। एक किसान ने आ कर किवाड़ खोले और पूछा क्या चाहते हो ? बादशाह ने कहा, "मैं थक गया हूँ और भूख के मारे अधमरा हो रहा हूँ, कृपा करके आज की रात मुझे यहीं ठहरने की आज्ञा दीजिए"। किसान ने कहा, "तुम बड़े कुसमय आये हो, क्योंकि आज मेरी स्त्री बीमार है और भोजन भी कुछ अच्छा नहीं बना है; परन्तु तुम प्रसन्नता से मेरे घर में ठहरो और जो कुछ यहाँ है उसको खाओ"। यह कह कर किसान बादशाह को एक छोटी सी कोठरी में लिवा ले गया। बादशाह को वहाँ ठहरा कर कुछ खाने को लाया और बोला "इससे अधिक मैं आपकी सेवा नहीं कर सकता और मैं अब अपनी स्त्री की दवा करने जाता हूँ"। थोड़ी देर पीछे किसान अपने छोटे बच्चे को गोद में लेकर फिर आया और बोला, "कल इसका नामकरण होगा"। बादशाह ने उसको गोद में लेकर कहा, "इस बालक के लक्षणों से जान पड़ता है कि यह बड़ा भाग्यवान होगा"।

रात बहुत हो गई थी, इस कारण वे सब घास का बिछौना बिछा कर सो गये। बादशाह भी एक कोने में पड़ रहा। सबेरा होते ही बादशाह ने किसान से विदा माँगते समय कहा, "मैं अब मास्को जाता हूँ, वहाँ मेरा एक परम मित्र रहता है। वह बड़ा दयावान है, उससे मैं आपके दयालु बर्ताव का वर्णन करूँगा; आशा है कि वह आपके लड़के का धर्मपिता बन

घाटों के सिवा और कई सुन्दर इमारतें जैसे चुङ्गीघर, गोदाम और टकसाल आदि हैं। यहाँ की प्रसिद्ध और देखने योग्य सरकारी इमारतों में हाईकोर्ट, खज़ाना, मेटकाफ़हाल, हिन्दू कालेज, ईसाई कालेज, मुसलमान कालेज, मेडिकल कालेज, बेंक बङ्गाल, युनिवर्सिटी और थीयेटर हैं। इनके सिवाय और कई एक अस्पताल, धर्मशाला, यन्त्रालय और रीडिङ्ग क्लब हैं।

चुङ्गीघर के सामने ५० फुट ऊँची एक लाट बनी है जिस पर उन लोगों के नाम खुदे हैं जो कालकोठरी (ब्लैकहोल) में मरे थे। १५ मील की दूरी से हुगली नदी का जल नलों के द्वारा सारे नगर में पहुँचाया जाता है। हिन्दुस्तानी आबादी में अनेक मन्दिर, मसजिदें, बाज़ार और दुकानें हैं।

पाठ ११

अतिथि-सत्कार

तीन सौ बरस हुए कि रूस देश में एक बादशाह राज करता था, जिसका नाम ईवान था। वह बहुधा भेष बदल कर अपनी प्रजा की दशा जानने के लिये अकेला नगर में घूमने जाया करता था। एक दिन वह भिखारी का रूप बना कर मास्को नगर के पास के एक गाँव में गया और वहाँ के महाजनों से भीख माँगी। बादशाह ने फटे वस्त्र पहिन कर अपनी ऐसी दीन दशा बना ली थी कि सबको उस पर दया करनी उचित थी, परन्तु किसी ने उसकी बात भी न पूछी। इस निठुर वर्ताव से अति क्रोधित हो

कर वादशाह लौटने ही को था कि उसने एक झोपड़ी देखी जहाँ कि उसने भीख नहीं माँगी थी। यह एक बड़े दरिद्री का घर था। वादशाह ने साँकर खटखटाई। एक किसान ने आ कर किवाड़ खोले और पूछा क्या चाहते हो? वादशाह ने कहा, "मैं थक गया हूँ और भूख के मारे अधमरा हो रहा हूँ, कृपा करके आज की रात मुझे यहीं ठहरने की आज्ञा दीजिए"। किसान ने कहा, "तुम बड़े कुसमय आये हो, क्योंकि आज मेरी स्त्री बीमार है और भोजन भी कुछ अच्छा नहीं बना है; परन्तु तुम प्रसन्नता से मेरे घर में ठहरो और जो कुछ यहाँ है उसको खाओ"। यह कह कर किसान वादशाह को एक छोटी सी कोठरी में लिवा ले गया। वादशाह को वहाँ ठहरा कर कुछ खाने को लाया और बोला "इससे अधिक मैं आपकी सेवा नहीं कर सकता और मैं अब अपनी स्त्री की दवा करने जाता हूँ"। थोड़ी देर पीछे किसान अपने छोटे बच्चे को गोद में लेकर फिर आया और बोला, "कल इसका नामकरण होगा"। वादशाह ने उसको गोद में लेकर कहा, "इस वालक के लक्षणों से जान पड़ता है कि यह बड़ा भाग्यवान होगा"।

रात बहुत हो गई थी, इस कारण वे सब घास का बिछौना बिछा कर सो गये। वादशाह भी एक कोने में पड़ रहा। सवेरा होते ही वादशाह ने किसान से विदा माँगते समय कहा, "मैं अब मास्को जाता हूँ, वहाँ मेरा एक परम मित्र रहता है। वह बड़ा दयावान है, उससे मैं आपके दयालु बर्ताव का वर्णन करूँगा; आशा है कि वह आपके लड़के का धर्मपिता बन

चरणों पर रख दिया। बादशाह प्यार से लड़के को गोद में उठा गिरजा की ओर चला। वहाँ जाकर उसने अपना वचन पूरा किया। फिर बादशाह लड़के को राजभवन में ले गया और उसे पढ़ा लिखा कर कुटुम्ब सहित उसका जन्म भर पालन पोषण करता रहा।

पाठ १२

विद्या के लाभ

(राजनीति से)

श्रीगंगाजू के तीर एक पटना नाम नगर, तहाँ सब गुण-निधान, महाजान, पुण्यवान सुदर्शन नाम राजा हो। वा ने एक दिन काहू पंडित ते द्वै श्लोक सुने, ताको अर्थ यह है कि अनेक अनेक प्रकार के संदेहानि को दूर करै अरु गूढ़ अर्थनि को प्रकाशै तातें सबकी आँखि शास्त्र है। जाहि शास्त्ररूपी नेत्र नाहीं सो आँधरो है। अरु तरुनापन, धन, प्रभुता, अविवेकता ये चारों एक एक अनर्थ के करनिहारे हैं अरु जहाँ ये चारों होयँ तहाँ न जानिये कहा होय। यह सुनि राजा अपने पुत्रनि की मूर्खता देखि चिन्ता करि कहन लाग्यो "ऐसे पुत्र भये कौन काम के जो विद्याकरि हीन अरु धर्म सों रहित; ते पुत्र ऐसे जैसे कानी आँख देखिवे को तो नाहीं पर दुखने आवे तो पीर करे। कह्यो है पुत्र ताही को कहिये जाके जन्म तें कुल की मर्याद होय। अरु यों तो संसार में मर कै को नाहीं उपजतु है। पर सज्जन अरु विद्यावान जो पुत्र वंश में होतु है सो पुरुषसिंह है। जैसे चन्द्रमा

तें आकाश शोभा पावतु है तैसे वा पुत्र सों कुल। जाको नाम गुणीन की गिन्ती में लिखनी ते नाहीं लिख्यो गयो, ताही की माता को बाँझ कहतु हैं। अरु दान, तप, शूरता, विद्या, अर्थ, लाभ, में जिनको यश नहीं भयो तिनकी माता ने केवल जनवेही को दुख पायो है, पै पुत्र को सुख नाहीं देख्यो। कहतु हैं जिननि बड़े तीर्थनि में अति कठिन तप व्रत कियो हैं तिनके सुत आज्ञाकारी, धनवान्, पण्डित, धर्मात्मा होतु हैं। ये छः वस्तु संसार में सुखदायक हैं—"सदा धन की प्राप्ति, शरीर की आरोग्यता, स्त्री तें हित, नारी मीठी बोली, पुत्र आज्ञाकारी, अरु विद्या तें लाभ"।

इतनी कहि पुनि राजा बोल्यो, "मेरे पुत्र गुणवान् होयँ तौ भलो"। यह सुनि कोऊ राजसभा में ते बोल्यो "महाराज! आयु, कर्म, वित्त, विद्या अरु मरन, ये पाँच बातें देहधारी को गर्भ ही में सिरजी हैं, तातें जो भावी में है सो बिना भये नाहीं रहति जैसे श्रीमहादेव जू की नग्नता अरु श्रीभगवान की सर्पशय्या। यासौं चिन्ता मति करौ, जो तिहारे पुत्रनि के कर्म में विद्या लिखी है तौ विद्यावान होयँगे"। पुनि राजा ने कही, "या तो साँच है, पर मनुष्य कौं परमेश्वर ने हाथ अरु ज्ञान दयो है सो विद्या साधन के अर्थ, जैसे एक चक्र को रथ न चले तैसे बिन पुरुषार्थ किये काज सिद्ध न होय, तातें उद्यम सदा करिये, कर्म को आसरो करि न बैठि रहिये। कह्यो है कि कुम्हार माटी ल्याय जो कछु करयो चाहै सो करे, तैसे नरहु अपने कर्म समान फल पावे, कर्म तो जड़ है वासों कछू न होय। उद्यम कर्त्ता है तासों कर्त्ता कर्म को प्रेरै, तब भलो बुरो कर्त्ता के कर्म संयोग तें होय, अरु केवल

कर्म कोई आसरो करि बैठि रहनो कुपूत को काम है। अरु जाके माता पिता सुत को विद्या को उद्यम न करावें ते शत्रु जानिये। कह्यो है कि मूढ़ पुत्र पंडितनि की सभा में शोभा न पावे जैसे हंसनि में बगुला न सोहै"।

आगे राजा ने यह विचारि पंडितनि की समाज करि कह्यो, "हे पंडितौ! तुम में कोऊ ऐसो पंडित है जो मेरे पुत्रनि कौं नीति मार्ग को उपदेश दे नयो जन्म करै? कह्यो है जैसे कांच कंचन की संगति पाय मरकति मनि जनाय, तैसे साधु की संगति में बुद्धि पाय मूर्खहू पंडित होय, अरु नीच की संगति में नीच"।

'संगति कीजै साधु की, हरै और की व्याधि।
ओछी संगति नीच की, आठों पहर उपाधि॥'

तहाँ राजा की बात सुनि विष्णुशर्मा वृद्ध ब्राह्मण सकल नीति-शास्त्र कौ जान ब्रहस्पति समान बोल्यो, "महाराज! राजकुमार तो पढ़ायवे योग्य हैं, अयोग्य कों विद्या न दीजिये; क्योंकि वह पढ़े तो सिद्ध न होय; और जो सिद्ध होय तो अनीति विशेष करै, विद्या को गुण छाँड़, अवगुण दृढ़ कर गाँठ बाँधै; तातें कुपात्र को न पढ़ाइये; जैसे बिलाव को नये नये भोजन खवाइये तौहूं बिलूरवे की बात न तजै। पुनि कोटि यतन करि बगुला को पढ़ाइये पर सुआ सों न पढ़ै; जो पुनि धर्म में निपुण होय तौहूं मछरी मारिवे की बात अधिक सीखे। महाराज! तिहारे कुल में तो निर्गुणी बालक न होयँ, ज्यों मनि मानिक की खानि में काँच न उपजै। हम विद्या बेचत नाहीं, तुम तें कछु लेत नाहीं,

पर तुम्हारी प्रार्थना है यातें हों तिहारे पुत्रनि को सहज सुभाव ही छः महीना में नीति मार्ग में निपुण करिहौं" ।

यह सुनि राजा वृद्ध ब्राह्मण विष्णुशर्मा सों बोल्यो, "अहो ! पुहुप की संगति तें देख्यो नान्हें कीटहू सज्जनि के माथे चढ़तु हैं, तातें तिहारे सतसंग तें कहा न होय ; जैसे पाथर को प्रतिष्ठा किये सब मनुष्य देवता करि पूजें, पुनि उदयाचल पर्वत की वस्तु सूर्य्य के उदय भये सर्व वस्तु सूर्य्य समान ही दीखें, सुसंग तें नीच की हू प्रतिष्ठा होय ।

चौपाई ।

कीट भृङ्ग ऐसे उर अंतर । मन स्वरूप करि देत निरंतर ॥
लोह हेम पारस के परसे । यह जग में यह सरसे दरसे ॥

दोहा ।

शेष शारदा व्यास मुनि कहत न पावें पार ।
सो महिमा सतसंग की कैसे कहै गवाँर ॥

तुम मेरे पुत्रनि को पण्डित करिबे जोग हो, ऐसे वह राजा ने बिनती करि ब्राह्मण को अपने पुत्र सौंपे ।

पाठ १२

डाइविंगव्यल

डाइविंगव्यल उस यंत्र को कहते हैं जिसके द्वारा मनुष्य गहरे पानी में उतरते और उसमें घंटों रह सकते हैं । यह यंत्र बड़े काम का है और इसको पहिले पहिल डाक्टर हेली साहब ने

बनाया था। यदि कोई वस्तु समुद्र में गिर पड़े तो इस यंत्र में बैठ मनुष्य गहरे पानी में जाकर उसको सहज में निकाल सकता है। सन् १६८७ ईसवी में अटलांटिक महासागर में, एक जहाज़ डूब गया। उस जहाज़ पर तीस लाख रुपया लदा था, वह भी जहाज़ के साथ रसातल पहुँच गया। एक साहब इसी यंत्र में बैठ कर समुद्र में उतरे और बीस लाख रुपया निकाल लाये। जितने पुल गङ्गा, यमुना आदि नदियों में बने हैं सब इसी की सहायता से बनाये गये हैं। मनुष्य इस यंत्र में बैठकर अथाह पानी के भीतर चले जाते हैं और तीन चार पहर तक निडर काम किया करते हैं। साधारण लोगों की समझ में यह बात नहीं आ सकती कि अथाह जल में मनुष्य तीन चार पहर तक कैसे रह सकता है परन्तु विद्या का ऐसा प्रभाव है कि उसके आगे कुछ भी असम्भव नहीं।

जो बातें पहिले बड़ी कठिन या असम्भव समझी जाती थीं, अब विद्या के प्रचार से सहज और सम्भव हो गई हैं। देखो अँगरेज़ों ने कैसी कैसी अपूर्व कलें बनाई हैं। जो यात्रायें पहिले दुख और कष्ट सह कर सैकड़ों रुपये लगाने से महीनों अथवा बरसों में होती थीं वे सब थोड़े ही धन में सुख से रेल के द्वारा हो जाती हैं। तार को देखो जिसके प्रताप से सहस्रों कोसों की दूरी पर बैठे हुए मनुष्य मिनटों में अपने मन की बातें एक दूसरे को बता सकते हैं। कहाँ तक लिखें, अँगरेज़ों ने ऐसी ऐसी अद्भुत सैकड़ों कलें बनाई हैं जिनसे सर्वसाधारण को बहुत सुभीता हो गया है। जो काम मनुष्य बड़े परिश्रम के साथ बहुत दिनों में हाथों से

करते थे अब कलों से सहज ही में हो जाते हैं। यह सब विद्या ह
की महिमा है ।

यह यंत्र घंटे के आकार का होता है। इसको किसी भार
धातु का बनाते हैं और यह प्रायः सात आठ फुट ऊँचा होता
है। उसमें एक बैठने की जगह बनी रहती है जिस पर तीन चार
मनुष्य सुख से बैठ सकते हैं। इस बात को समझने के लिए कि
यंत्र में पानी क्यों नहीं चढ़ता, यह जानना चाहिए कि प्रकृति का
नियम है कि एक ही स्थान पर एक ही समय में दो वस्तु नहीं रह
सकतीं। यह तो सब ही ने देखा होगा कि यदि घड़ा उलटा कर
के पानी पर रक्खा जाय तो न वह डूबता है और न उसमें पानी
भरता है। इसका कारण यह है कि उस घड़े में हवा भरी रहती
है और मुँह पानी पर रक्खे जाने से हवा का निकास नहीं
रहता। इस नियम के अनुसार जब तक कि हवा घड़े में से
न निकलेगी तब तक उसमें पानी न जा सकेगा। परन्तु घड़
टेढ़ा हो जाने वा और किसी प्रकार हवा के निकल जाने से पानी
तुरन्त भर जायगा। इसी नियम के अनुसार डाइविंगव्यल बनता
है और यही कारण है कि उसमें पानी नहीं भरता। इस यन्त्र को
इतना भारी बनाते हैं कि यह पानी में डूब जाय। बहुधा इसको
भारी करने के लिए इसमें सीसे के गोले लटकाते हैं। ज्यों ज्यों
यह यन्त्र पानी में नीचे उतरता जाता है त्यों त्यों इसकी हवा
पानी के दवाव से सिमटती जाती है और पानी थोड़ा थोड़ा
चढ़ता जाता है। इस दोष को मिटाने के लिए ऊपर से एक नली
यन्त्र में लगाई जाती है जिसके द्वारा कल से उसमें हवा बराबर

पहुँचती रहती है। सिमटने से जितना स्थान ख़ाली होता है उसमें नई हवा इस प्रकार भर जाती है और पानी यन्त्र में चढ़ने नहीं पाता। पानी के दवाव से वीच ही में फट जाने के भय से यह यन्त्र दृढ़ वनाया जाता है।

एक समय एक साहव रात को वत्ती लेकर यन्त्र में वैठ समुद्र में उतरे। राह में उन्होंने अनेक प्रकार की मछलियों के झुंड देखे। मछलियाँ यन्त्र के चारों ओर खेलती फिरती थीं और कभी कभी यन्त्र के नीचे आकर उनका पैर सूँघती थीं। तव तो साहव घवराये। वहुत सी मछलियाँ उनमें ऐसी थीं जिनको उन्होंने पहले कभी नहीं देखा था। शीघ्र ही उन्होंने रस्सी हिलाई। यह संकेत पाते ही उनके साथियों ने यन्त्र को ऊपर खींच लिया। मछलियों के झुंड भी यन्त्र के साथ साथ ऊपर तक आये। यह देख कर सवको अचरज हुआ।

पाठ १४

ऊसर

(मुफ़ीदुल मज़ारईन से)

ऊसर उस धरती को कहते हैं जिसमें खेती नहीं हो सकती और मर खप कर कुछ वोया भी जाय तो वीज अकारथ जाता है। ऊसर कई प्रकार के होते हैं और इसी कारण उनके नाम भी भिन्न भिन्न हैं। थोड़े से ऊसरों के भेद उनके लक्षण समेत नीचे लिखे जाते हैं।

(१) "कड़ा बंजर"—बंजर धरती वास्तव में ऐसी नहीं है कि उस पर हल न चल सके, पर इसकी मिट्टी बहुत कड़ी होती है। इसमें बरसात का पानी थोड़ा ही समाता है और ऊपर की मिट्टी थोड़ी ही गहराई तक भीगती है। इसी कारण इसमें जड़ें दूर तक फैल नहीं सकतीं और न वह पदार्थ पा सकती हैं जिनसे पौधे बढ़ते हैं। ऐसी मिट्टी में हल भी नहीं चल सकता। ऊपर कुछ भीगी रहने से उस पर अच्छी घास और आक के पेड़ जम आते हैं और जाड़े तक बने रहते हैं।

(२) "दुबरिया ऊसर"—यह भी निपट ऊसर है। इसकी मिट्टी कड़े ऊसर से भी कड़ी और निकम्मी होती है। ऐसे ऊसर में बरसात में कई प्रकार की घास जम आती हैं जिन्हें गोरू बड़ी रुचि से खाते हैं। इन घासों का व्योरा यह है। "डाभ या कुश—" ऐसी घास की जड़ मूसला होती है और धरती में दूर तक चली जाती है। इसकी जड़ लम्बी और कड़ी होती है। लोग जड़ की छड़ी बना लेते हैं। हम लोग कुश को पवित्र मानते हैं। इसे गोरू जब और कुछ नहीं पाते खा लेते हैं। "ऊसरैरी दूब या काली घास"—यह घास दूब के समान पर उससे कुछ कड़ी होती है। गोरू इसे बड़े मन से खाते हैं। "अजनेवा घास"—यह घास भी दूब के समान अच्छी होती है, पर इसका पौधा लंबा, पत्तियाँ चौड़ी और दूब से मोटी और कड़ी होती हैं। गोरू इसको प्रसन्नता से खा लेते हैं। "नरी घास"—यह घास ऊसर के उन भागों में बहुत होती है जहाँ सील बहुत रहती है। इसका पौधा तह पर तह छत्ते के आकार का फैलता है। इसकी डालियाँ मोटी

और नरम होती हैं। उनकी गाँठों में से जड़ें निकल कर धरती में चली जाती हैं और उससे कल्ले फूटते हैं। इस घास को भैंसें बहुत खाती हैं। गाय बैल भी खा लेते हैं पर वैसे चाव से नहीं।

(३) "पटपर ऊसर"—ऐसे ऊसरों के खतार की मिट्टी बहुत कड़ी और निकम्मी होती है और उसके नीचे वह मिट्टियाँ रहती हैं जिन्हें खरिया मिट्टी और कुम्हरिया मिट्टी कहते हैं। यह दोनों मिट्टियाँ बरतन बनाने में कुम्हारों के काम आती हैं। खरिया मिट्टी में पानी कुम्हरिया से अधिक समाता है। ऐसे ऊसर में कहीं कहीं छत्ते के आकार में घास फैली होती है जैसे लरसी और मकरा। इसमें कहीं कहीं उजली और कहीं खुरदरी चटें भी होती हैं जिन पर घास जमती ही नहीं और न उन पर पानी पड़ने से कुछ होता है। ऐसी मिट्टी में चींटियाँ बिल बना कर रहती हैं।

(४) "रेह ऊसर"—इनके खतार और नीचे की मिट्टियाँ वास्तव में निकम्मी नहीं होतीं, पर इसमें शोरा और सज्जी के साथ गन्धक के संयुक्त पदार्थ और नमक मिले रहते हैं। इसको रेह कहते हैं। यह पदार्थ धरती पर बहुत रहते हैं और बरसात के पानी के साथ तुरन्त घुल कर मिट्टी में समा जाते हैं। जब धूप पड़ने से पानी भाफ बन कर उड़ जाता है तब यह खार ऊपर आकर इकट्ठा हो जाते हैं। इन ऊसरों पर ठौर ठौर अच्छी मिट्टी की चकत्तियाँ होती हैं जिन पर घास और झाड़ उग आते हैं; पर जहाँ रेह रहती है वहाँ कुछ भी नहीं होता। इस ऊसर के नीचे के तह में बहुधा कंकड़ या कंकड़ी और काबिस की चट होती है।

(५) "चटियल या चटान ऊसर"—इसके ऊपर और नीचे की मिट्टियाँ निकम्मी होती हैं। यह मिट्टी या तो कावित्त या कपसे की खानि या मरवाँ की होती है। कावित्त को कुम्हार बरतनों पर रंग देने के काम में लाते हैं। पानी में पीस कर फूँक देने से उसमें एक प्रकार की सोंधी सुगन्ध आती है। मरवाँ बहुत कड़ी होती है। इसका रंग लाल होता है और इसमें कंकड़ों की काली काली बजरी मिली रहती है। इस पर घास नहीं जमती।

(६) "कंकड़िया ऊसर"—इस ऊसर के ऊपर की तह में कंकड़ या कंकड़ की बजरी बहुत रहती है और नीचे की तह में कंकड़ की चट। इस ऊसर में अच्छी घास नहीं होती। बरसात में छोटी छोटी घास जम आती है जिसे पशु भी कम खाते हैं। ऐसे ऊसर नदी नालों के पास बहुत मिलते हैं और जब पानी के बहाव से कट कट कर उनकी मिट्टी ऊँची हो जाती है, तब उनको बीहड़ बोलते हैं और इन पर बबूल, ऊँटकटारा और झड़बेरी के पेड़ जम जाते हैं।

(७) "फटवाँ ऊसर"—फटवाँ एक प्रकार की बिना लस की मिट्टी का नाम है। यह और मिट्टियों की अपेक्षा निकम्मी होती है। इसमें पानी नहीं समाता। ऐसे ऊसर लगातार दूर तक नहीं होते। किसी किसी ऊसर में इसके चकत्ते बहुत होते हैं और इसीसे इन्हें फटवाँ कहते हैं।

जितने ऊसर हैं सब खेती बारी के काम आ सकते हैं और फटवाँ को छोड़ उपाय करने से सब जोतने बोने के योग्य बन सकते हैं।

पाठ १५

स्वार्थी और अन्यायी से न्याय की आशा न रखनी चाहिये

एक भेड़िया, लोमड़ी और गदहा तीनों बैठे हुए आपस में बात करते थे और संसार की अनित्यता की चर्चा थी। अंत में सबकी यह सम्मति हुई कि चलो किसी देवस्थान पर चलें और अपने अपने अपराध को स्वीकार करके परमेश्वर से क्षमा माँगें। यह निश्चय कर तीनों वहाँ गये और सब अपने अपने अपराध का बखान करने लगे।

भेड़िये ने कहा, "हाय! मेरे अपराध ईश्वर कैसे क्षमा करेगा मैंने तो एक ऐसा अनर्थ किया है कि जब मुझको उसकी सुध आती है तो मेरे रोंगटे खड़े हो जाते हैं। एक अभागी बकरी के चार बच्चे थे; वह उन बच्चों को छोड़ कर अपना पेट भरने के लिये घर घर फिरा करती थी। निर्दयी बकरी बच्चों की सुध न लेती थी; मुझसे यह देखा न गया और मैंने बकरी को मार डाला। फिर मैंने सोचा कि अब यह अनाथ बच्चे कैसे जियेंगे, अन्त में मर ही जायँगे, फिर दुख क्यों सहें। ईश्वर जानता है कि यही विचार करके मैंने उनको भी खा लिया"। यह कह कर भेड़िया धाड़ मार कर रोने लगा।

लोमड़ी ने कहा, 'भैया तुम बड़े दयालु हो; तुम क्यों पछताते और रोते हो।' हमने माना कि तुमने बकरी को मारा और उसके बच्चों को भी खा लिया, परन्तु ईश्वर तो अभिप्राय देखता

है। दोनों कामों में तुम्हारा विचार यही था कि भलाई करें। बकरी तो मारने ही के योग्य थी, क्योंकि वह अपने बच्चों का यथोचित पालन पोषण नहीं करती थी। रहे बच्चे, उनके विषय में कुछ कहने का प्रयोजन नहीं। क्या परमेश्वर नहीं जानता कि उसमें तुम्हारा कुछ भी स्वार्थ नहीं था। तुमको निस्संदेह भलाई की आशा रखनी चाहिये, क्योंकि तुमने ऐसी निर्दयी माँ को मारा और ऐसे घोर कष्ट से बच्चों को छुड़ाया।

फिर लोमड़ी ने कहा, "मैं बड़े ही संकट में हूँ; देखें ईश्वर के सामने क्या दशा होती है। मैंने तो ऐसा काम किया है कि नरक में भी मेरा ठिकाना नहीं है। एक मनुष्य के घर में बहुत सी मुर्गियाँ पली थीं; वे नित्य आपस में लड़ती थीं और हल्ला गुल्ला मचाती थीं, जिससे पड़ोसियों का नाक में दम आ गया था। उन मुर्गियों ने अपना दरबा ही नहीं वरन् सारा मुहल्ला मैला कुचैला कर रक्खा था; पड़ोसियों के बर्त्तनों में पानी पीती थीं, उनका उरहना नित आता था; मुहल्ले वालों का दुख सुनते सुनते मेरा कलेजा पक गया और मुझसे उनका दुख न देखा गया। मैंने दरबे में जाकर सबको चीड़ फाड़ कर ठिकाने लगाया"। यह कह कर लोमड़ी फूट फूट कर रोने लगी। भेड़िये ने सुन कर कहा, "भागवान! क्यों इतना रोती है? इसमें तेरा क्या दोष है? ईश्वर तो बड़ा ही न्यायी है। मुर्गियाँ इसी दंड के योग्य थीं। तूने उनको मार कर ऐसा उपकार किया है कि तू भी मरने पर सीधी स्वर्ग को चली जायगी।"

फिर लोमड़ी और भेड़िये ने गदहे से कहा, "भाई गदहे!

जो तुमसे भी कोई अपराध हुआ हो तो कह डालो ; ऐसा कौन है जिससे पाप न हुए हों" ? गदहे ने कहा, "न मेरे सींग हैं कि किसी को मारूँ, न पंजे हैं न दाँत कि किसी को फाड़ूँ या काटूँ। जीवन भर में मैंने दो अपराध किये हैं, एक तो यह कि मैं एक दिन बहुत ही भूखा था और मुझ पर घास लदी हुई थी ; जिसमें से मैंने मालिक की आज्ञा बिना दो चार मुँह खा ली। दूसरा यह कि एक दिन मैं चला जाता था, लड़के मुझे बिना अपराध छेड़ने और सताने लगे, मैंने एक लड़के की तरफ़ दुलत्ती झाड़ी परन्तु किसी के लगी नहीं। फिर भी मैं अपने अपराध को स्वीकार करता हूँ।"

भेड़िया बोला, "अरे दुष्ट ! ऐसे बड़े इकट्ठे दो अपराध किये और फिर भी क्षमा की आशा रखता है ? पापी, तूने मालिक के माल में से चोरी करके घास खाई जिससे न जाने कितने पशु भूखे रह गये होंगे, और तूने लड़के पर दुलत्ती झाड़ी जो मर जाता तो एक जान जाती और उसका सारा घर उसके शोक में मर जाता"।

लोमड़ी ने कहा, "सच तो यह है जो ऐसे अपराध क्षमा किये जायँ तो संसार के सारे काम बिगड़ जायँ और लोग ईश्वर से न डरा करें। गदहा केवल अपराधी ही नहीं किन्तु चोर और हत्यारा भी है इसलिए मारने योग्य है"। यह कह कर भेड़िया और लोमड़ी दोनों उस पर टूट पड़े और उसे चीर फाड़ कर चट कर गये।

पाठ १६

श्रीमती महारानी विक्टोरिया का जीवन-चरित्र

श्रीमती महारानी विक्टोरिया का जन्म २४ मई सन् १८१९ ई० को हुआ था। इनके पिता ड्यूक आफ़ केंट तीसरे जार्ज के चौथे बेटे थे। जार्ज के मरने पर उनके बड़े बेटे चौथे जार्ज के नाम से गद्दी पर बैठे, परन्तु चौथे जार्ज और उनके छोटे भाइयों, ड्यूक आफ़ यार्क और ड्यूक आफ़ क्लारेंस के कोई सन्तान न थी इस कारण इन तीनों के पीछे केवल महारानी विक्टोरिया के पिता राज के अधिकारी होते। महारानी विक्टोरिया का जन्म चार बजे सवेरे हुआ और उसी समय यह शुभ समाचार बादशाह के मन्त्रियों और अधिकारियों को दिया गया। साल भर पीछे उनके पिता मर गये। जब महारानी विक्टोरिया पाँच बरस की हुईं तब जार्ज की इच्छानुसार उनकी शिक्षा के लिए पार्लिमेंट से ६ हज़ार पौंड (१) सालाना मंज़ूर किये गये। बचपन ही से विक्टोरिया बड़ी सुशील और बुद्धिमती थीं। जब वह छोटी फिटन गाड़ी में बैठ कर बाहर सैर को जाया करतीं अनेक पुरुष उनसे बोलना चाहते थे, और जो कोई उनसे बातचीत करता था उसे वह नम्रता से उत्तर देतीं और उसका प्रणाम आदर से लेती थीं। ग्यारह बरस की अवस्था में वह फरासीसी और जर्मन भाषाओं को अच्छी तरह बोल सकती थीं। उसी अवस्था में

---

(१) पौंड एक सोने का सिक्का है जो सावरन के नाम से कुछ दिन हुए में जारी हुआ है। इसका मूल्य १५) है।

उन्होंने इटली देश की भाषा सीखी और लैटिन और यूनानी भाषाओं का भी सीखना आरंभ किया। चित्रकारी, गणित और संगीत विद्याओं में बड़ी निपुण हो गईं।

सन् १८२७ ई० में ड्यूक आफ़ यार्क का देहांत हुआ और उनके तीन वरस पीछे चौथे जार्ज भी परलोक सिधारे। उनके मरने पर राजकुमारी के तीसरे चचा ड्यूक आफ़ क्लारेंस चौथे विलियम के नाम से गद्दी पर बैठे। परन्तु छः सात वरस राज करके ७० वरस की अवस्था में वह भी मर गये। राजकुमारी को उनके मरने का समाचार कैंटरवरी के प्रधान पादरी और लार्ड चेम्बरलेन ने उनके राजभवन पर प्रातःकाल के पाँच वजे सुनाया। राजकुमारी उस समय सो रही थीं, यह समाचार पाते ही जगीं और उसी समय अपनी माँ को उन्होंने यह पत्र लिखा—"बाद-शाह के मरने का मुझे बड़ा शोक है और ईश्वर से प्रार्थना करती हूँ कि वह मुझे राज काज सँभालने की बुद्धि दे"। महारानी का अभि-षेक २८ जून सन् १८३७ ई० को बड़ी धूमधाम से हुआ। दो वरस पीछे महारानी का विवाह सेक्सकोवर्ग के राजकुमार एलवर्ट के साथ हुआ। इस विवाह से महारानी वहुत प्रसन्न हुईं। राजकुमार एलवर्ट से महारानी को बड़ी प्रीति थी। महारानी ने अपने पत्रों में, जो उन्होंने समय समय पर अपने मित्रों को लिखे थे, अपने पति के गुणों और स्वभाव की प्रशंसा की है। महारानी के नवम्बर सन् १८४७ ई० में कन्या उत्पन्न हुई और उसके साल भर पीछे प्रिंस आफ़ वेल्स का जन्म हुआ। उस समय सम्पूर्ण राज्य में पुत्र के जन्म की बधाई हुई और प्रजा ने वहुत सुख माना।

राजकुमार एलवर्ट श्रीमती महारानी के राज-काज सँभालने में सदा सहायक रहते थे। प्रातःकाल चाय पीकर उपवन की सैर को जाते और वहाँ से आकर अपना नित्य नेम करके चित्रकारी में लगे रहते थे। दोपहर के पीछे महारानी का प्रधान मन्त्री आता, उसके साथ वह प्रति दिन राज का काम करती थीं और सायंकाल गाड़ी में बैठ कर अपने पति, माता अथवा और स्त्रियों के साथ बाहर सैर को जाया करती थीं। राजकुमार शतरंज के खेल में बहुत निपुण थे। रात को समय मिलता तो बहुधा शतरंज खेला करते, अथवा किसी पुस्तक या पत्र को पढ़कर महारानी को सुनाया करते थे। इस प्रकार राजकुमार एलवर्ट के साथ महारानी के बाईस बरस बड़े सुख से बीते। सन् १८६१ ई० राजकुमार ज्वर से पीड़ित हो कुछ दिनों तक बीमार रहे, दवा दर्पन बहुत की गई, पर काल कराल ने उनको न छोड़ा। उनके मरने से महारानी को बड़ा शोक हुआ और उसी दिन से उन्होंने एकांत में रहना स्वीकार कर लिया। महारानी को सदा अपनी प्रजा से बड़ी सहानुभूति थी। राजकुमार एलवर्ट को मरे एक महीना भी न हुआ था कि हार्टली की कोयले की खान फट जाने से ऐसी बड़ी दुर्घटना हुई कि दो सौ चार मनुष्य मर गये। महारानी ने उस समय अपना दुख भूल एक तार भेजा जिसमें मृतक पुरुषों की विधवाओं और माताओं से अत्यन्त दुःख प्रकाश किया। सन् १८७८ ई० में उनकी लड़की 'प्रिंसेस एलिस' का और सन् १८८४ ई० में सब से छोटे लड़के ड्यूक आफ़ एलबानी का देहांत हुआ। सन् १८८७

ई० में महारानी के राज के पचास वरस पूरे होने का उत्सव विलायत और हिन्दुस्तान में अति धूमधाम से किया गया। इसी प्रकार सन् १८९७ ई० में उनके राज के ६० वरस पूरे होने का भी बड़ा उत्सव हुआ। यह दोनों उत्सव "स्वर्ण" और "हीरक" जुबिली के नाम से प्रसिद्ध हैं। महारानी की महिमा और उनका अतुल प्रताप इस समय पृथ्वी पर चारों ओर छा रहा है। उनका राज इतना बड़ा है कि वास्तव में सूरज उसमें अस्त नहीं होता और प्रजा इतनी सुखी और प्रसन्न है कि स्त्री पुरुष सबही महारानी की स्तुति और उनके वैभव, संपत्ति और आयु* की वृद्धि के लिये प्रार्थना किया करते थे। ऐसी गुणी और प्रतापी महारानी की प्रजा होना हमको अपना पूर्ण सौभाग्य समझना चाहिए।

पाठ १७

सिंह का शिकार

हिन्दुस्तान में ऐसे जंगल वहुत हैं जिनमें सिंह पाये जाते हैं। पुराने समय में शिकार खेलना क्षत्रिय राजाओं का एक मुख्य धर्म था और अब भी वहुत से राजपूत, राजा और महाराजा शिकार खेलते हैं। सिंह को मारना वड़ी वीरता और साहस का काम है। सिंह का शिकार तीन प्रकार से होता है; अर्थात् हाथी पर से, पेड़

*परन्तु हाय ! ऐसी गुणवती महारानी को भी भगवान् ने इस असार संसार से सारी प्रजा को अनाथ करके उठा लिया। महारानी का परलोकवास २२ जनवरी सन् १९०१ को ८३ वरस की अवस्था में हुआ।

पर से और पैदल। जिस दिन हाथी पर से शिकार करना होता है उससे पहिली रात को मनुष्य खाना और बन्दूक लेकर तैयार हो जाते हैं। दूसरे दिन सूरज निकलने के पहिले हाथियों पर बैठ जंगल की ओर जाते हैं। एक हाथी पर शिकारी बैठते हैं; दूसरे पर बाजा बजानेवाले रहते हैं। और तीसरे पर असबाब और उनके खाने पीने का सामान रक्खा जाता है। जंगल में पहुँच कर वे दो तीन भेड़ बकरियाँ छोड़ देते हैं। सिंह उनको बास पाकर बाहर निकल आता है और उसी समय शिकारी उस पर गोली चलाते हैं। यदि सिंह के गोली न लगी तो सीधा हाथियों पर टूट पड़ता है। यह देख कर बाजेवाले एक संग ज़ोर से बाजा बजाते हैं और सिंह बाजे से डर कर भागता है। शिकारी हाथी को बढ़ा कर सिंह का पीछा करते हैं और उस पर फिर दूसरी बाढ़ मार गिरा देते हैं और उसकी लोथ उठा लाते हैं।

पेड़ों पर से सिंह का शिकार कम होता है। ऐसा शिकार बहुधा अठारह बीस बरस की अवस्था ही के लड़के करते हैं। पचास साठ लड़के बन्दूकें लेकर दोपहर को जंगल में चले जाते हैं। दो बड़े बड़े पेड़ों की डालियों पर बड़े बड़े दो बाँस रख खपच्चियाँ बाँध पत्तियाँ और कपड़े बिछा कर खाट सी बना लेते हैं। एक पर वे बैठ जाते हैं, दूसरे पेड़ पर अपना सामान रख लेते हैं। जब साँझ हो जाती है और सूरज छिपने लगता है तब दो तीन बकरियाँ पेड़ों में लोहे की ज़ंजीरों से अच्छी तरह बाँध दी जाती हैं। उनकी बास पाकर सिंह अपनी जगह से बाहर आता है और ज्योंही वह बकरियों को पकड़ता है उसके ऊपर

गोली चलती है। सिंह गुर्रा कर ऊपर उछलता है, पर दूसरी बाढ़ छूटती है और वह घायल होकर गिर पड़ता है। लड़के नीचे उतर कर बाजा बजाते हुए उसको उठा ले जाते हैं और उसकी लोथ में एक प्रकार का तेल लगा देते हैं जिससे उसकी खाल फिर नहीं बिगड़ती।

सिंह को पैदल मारना बड़ा कठिन काम है। इसमें जान जोखों है। कुछ आदमी तो यह करते हैं कि हाथी पर जङ्गल में जाते हैं और जब सिंह को आता हुआ देखते हैं तब हाथी से उतर एक हाथ में बड़ी ढाल और दूसरे हाथ में बड़ी तलवार या कटार लेकर सामने घुटनों के बल बैठ जाते हैं। सिंह उन पर झपटता है, पर वे उसके पंजे की चोट को ढाल से बचा कर उसके कलेजे में कटार मार उसको गिरा देते हैं। कोई कोई पराक्रमी मनुष्य ऐसा भी करते हैं कि सिंह को भालों से अपने पास नहीं आने देते और जब वह पास आता है अपने जूतों से, जिनके आगे पैनी कटार लगी रहती है, ठोकर मार कर उसे मार डालते हैं। कहते हैं कि एक महाराजा ने एक समय लार्ड रिपन के सामने यह अद्भुत चरित्र कर दिखाया था। महाराजा ठिँगना मोटा पर बड़ा ही बली था। लाट साहब और उनके साथी हाथियों और घोड़ों पर सवार हो राजा के साथ घने जङ्गल में पहुँचे। लाट साहब अपनी मेम के साथ हाथी के हौदे पर, जिसमें लोहे का पिंजरा लगा हुआ था, जाकर बैठ गये। कुछ मनुष्य पेड़ों पर चढ़ गये और घोड़े हाथियों के बीच में खड़े कर दिये गये। बकरियाँ छोड़ दी गईं। उनकी बास पाकर सिंह अपनी

जगह से निकला। राजा कवच पहिने एक हाथ में भाला और दूसरे हाथ में ढाल लिये आगे बढ़ा। उसके दोनों जूतों के आगे एक एक पैनी कटार लगी हुई थी। सिंह को देखते ही आदमी चिल्लाने, हाथी चिंघाड़ने और घोड़े हिनहिनाने लगे। यह शूरवीर राजा बकरी के पास जाकर खड़ा हुआ और सिंह से बोला कि तू जङ्गल का राजा है और मैं अपने देश का राजा हूँ; अपना पराक्रम दिखला और यदि सामर्थ्य हो तो मेरे सामने आ। सिंह चटक कर झपटा, पर राजा ने भाले की मार से अपने पास न फटकने दिया। सिंह कभी बाईं ओर और कभी दाहिनी ओर आता था; इतने ही में राजा ने अवसर पाकर सिंह के कलेजे में ऐसी ठोकर मारी कि कटार उसके पेट में घुस गई और सिंह उछल कर गिर पड़ा और मर गया। उसका पराक्रम देख कर सब लोग बहुत प्रसन्न हुए और उसकी वीरता की सराहना की।

पाठ १८

समुद्र से मोती निकालने की रीति

मोती का प्रचार इस देश में बहुत है। जिसके धन है वे तो सच्चे मोतियों की माला पहनते हैं; जिनके नहीं होता वे चाँदी के गोल दाने या काँच के झूठे मोती नथ और बालियों में पिरो कर अपने बच्चों और स्त्रियों को पहनाते हैं। मोती का रंग उजला

होता है, पर सोनहरं और गुलाबी रंग के मोती भी देखे गये हैं।

यह तो बहुत लोग जानते होंगे कि मोती सीप से निकलता है, पर सब सीपों में मोती नहीं होते। मोती केवल कस्तूरा सीप में पाया जाता है। यह समुद्र में कई जगह मिलती है, पर इनमें सबसे प्रसिद्ध लंका द्वीप के पश्चिम तट पर कंदाची की खाड़ी है। इस खाड़ी के पास मनार द्वीप है और प्यारेपी, कंदाची और पंपोरियो नाम नगर बसते हैं। जहाँ मोती निकलता है वह स्थान किनारे से १० कोस है। वहाँ आठ दस पुरसे पानी रहता है, और यह सरकार अँगरेज़ बहादुर के अधिकार में है। मोती निकालने का ठेका बहुधा सौदागरों को दे दिया जाता है। कभी कभी सरकार की ओर से भी मोती निकाले जाते हैं। जिस स्थान में कस्तूरा सीप निकलती है उसको सात विभाग कर दिये गये हैं, और प्रत्येक विभाग में बारी बारी से सीप निकाली जाती है। एक ही जगह सीप निकालने से बड़ी हानि होती है, क्योंकि कस्तूरा के बढ़ने के लिये सात बरस चाहिए। मोती निकालने के दिनों में समुद्र के तट पर लाखों मनुष्य इकट्ठे हो जाते हैं। पहिले यह जगह निपट उजाड़ थी, परन्तु जब से यहाँ मोती निकलने लगे हैं, एक बड़ा भारी नगर बस गया है। मोती डेढ़ महीने तक निकाले जाते हैं। रात को दस बजे जब थल से जल की ओर हवा चलती है, लोग नाव पर चढ़ कर उस जगह पहुँच जाते हैं। सवेरा होते ही डुबकी मारनेवाले, जो उन डोंगियों पर बैठे रहते हैं, पानी में उतरते हैं। हर एक डोंगी में बड़े बड़े मोटे रस्सों

से पाँच लंगर लटकाये जाते हैं; और उन्हीं के सहारे डुबकी मारनेवाले नीचे तह पर पहुँच जाते हैं। लंगरों के साथ एक एक टोकरी भी बँधी रहती है, उसी में पनडुब्बे छुरी से सीपों को छोड़ा छोड़ा कर भर देते हैं। एक मनुष्य पानी में दो ही मिनट रह सकता है, इसी कारण वह मिनट भर के भीतर टोकरी को सीप से भर देता है। एक टोकरी में सौ सीप से कम नहीं आती। दो मिनट पीछे वह ऊपर खींच लिया जाता है और पाँच मनुष्य फिर पानी में घुसते हैं। इसी रीति से दिन भर में एक मनुष्य चालीस पचास डुबकी लगाता है। दोपहर बीते सीपों से लदी हुई डोंगियाँ किनारे पर आ जाती हैं। इन्हें उतार कर एक खुली जगह में रख कर सड़ाते हैं। सड़ने से बड़ी दुर्गन्ध उठती है, पर सीपियाँ आपसे आप अलग हो जाती हैं और उन्हें कठरों में धोने से मोती सहज ही में निकल आते हैं। मोती धुलने के पीछे तीन प्रकार की चलनियों से चाले जाते हैं। पहली चलनी के छेद बड़े होते हैं, उससे बड़े मोती अलग किये जाते हैं। ऐसे ही एक चलनी मझोले मोतियों के भी अलग करने की होती है। जो मोती तीसरी चलनी में रह जाते हैं सबसे छोटे गिने जाते हैं; और जो तीसरी चलनी में छन जाते हैं वे बेधे नहीं जाते और ओषधि आदि के काम आते हैं। इसके पीछे मोती एक प्रकार की बुकनी से साफ़ किये जाते हैं। जिन सीपियों में मोती निकलते हैं वह भी मोती सी चमकती हैं। चीन के निवासी सीप की अनेक चीज़ें बनाते हैं और इँगलिस्तान वाले इसको सन्दूकों पर जड़ते हैं। हमारे देश में भी सीप के बटन का बहुत प्रचार है।

पहिले मोती बड़े महँगे बिकते थे, पर अब इनके दाम घटते जाते हैं। इसका मुख्य कारण झूठे मोती का प्रचार है। फ़ांस के कारीगर कभी कभी ऐसे भी मोती बनाते हैं कि जिनकी चमक दमक के आगे सच्चे मोती भी दब जाते हैं। झूठे मोती बनाने की रीति पहिले जेक्विन साहब ने निकाली थी। वह एक दिन बलीक मछली को पानी में धो रहे थे। जब धो चुके तो पानी पर चाँदी के से परमाणु उतराते देखे। उन्होंने उन को इकट्ठा करके सुखलाया तो एक बुकनी सी निकल आई जो चाँदी सी चमकती थी। इस बुकनी का नाम मोती की धूल रक्खा और चूने की गोलियाँ बना कर वह बुकनी उन पर लगा दी। पहिले तो लोगों ने इन मोतियों को बहुत पसंद किया, पीछे जान पड़ा कि पहनने और गरम होने से बुकनी छूट जाती है। इस दोष के मिटाने के लिये शीशे के पोले दाने बनाये गये और उनके भीतर बुकनी डाली गई। जब बुकनी दाने के चारों ओर लग गई तब उसमें मोम भर दिया, जिससे मोती भारी हो गये और सहज में टूटने का डर जाता रहा। यह बुकनी मछलियों के छिलकों से निकलती है। चार हज़ार मछलियों को धोने से दस तोला बुकनी मिलती है। यह बुकनी कुछ दिन रखने से सड़ जाती है, इससे अब इसको अमोनिया में रखते हैं।

आज कल झूठे मोतियों का प्रचार इतना बढ़ गया है कि फ़ांस की राजधानी पेरिस नगर के पास सेन नदी में मछलियों का अकाल पड़ गया है।

पाठ १९

जयदेव का जीवन-चरित

नौ सौ वरस हुए जयदेव जी (१) का जन्म ज़िला वीरभूम बंगाल के किंदुविल्व गाँव में हुआ था। इनके पिता का नाम भोजदेव और माता का रमादेवी था। इनके बचपन का हाल ठीक ठीक नहीं मिलता। जयदेव जी के माँ बाप बहुत ही छोटी अवस्था में इनको छोड़ स्वर्गवासी हुए। इनका किसने पोषण किया वा किस प्रकार इन्होंने विद्या सीखी इसका कुछ पता नहीं चलता। इनके विवाह का हाल बड़ा विचित्र है। कहते हैं कि किसी ब्राह्मण के कोई वाल बच्चा न था। वह दुखी होकर जगन्नाथ जी की सेवा करने लगा। ईश्वर की कृपा से थोड़े ही दिनों में उसके एक लड़की हुई जिसका नाम उसने पद्मावती रक्खा। जब वह व्याहने के योग्य हुई तब जगन्नाथजी ने उसे स्वप्न में आज्ञा दी कि तुम अपनी लड़की का विवाह हमारे भक्त जयदेव के साथ, जो अमुक पेड़ के नीचे रहते हैं, कर दो। ब्राह्मण लड़की को लेकर जयदेव जी के पास आया। जयदेव जी ने उसके साथ विवाह करना अंगीकार न किया। पर ब्राह्मण ने न माना और पद्मावती को जगन्नाथ जी की आज्ञानुसार वहीं छोड़ अपने घर चला गया। जयदेव जी ने

---

(१) कहते हैं कि जयदेव बङ्गाल के राजा लक्ष्मणसेन के समय में हुए थे। इस राजा के समय का अक्षर खुदा हुआ, एक पत्थर मिलता है जिस पर संवत् ११७२ अंकित है।

उस कन्या से पूछा, "तेरी क्या इच्छा है ?" पद्मावती ने उत्तर दिया, "अभी तक मैं अपने बाप की आज्ञा में थी, अब मैं आपकी दासी हुई; चाहे रक्खो चाहे निकालो, मैं आपकी सेवा न छोड़ूँगी"। जयदेवजी उसके मुख से यह सुन कर बहुत प्रसन्न हुए और उन्होंने उसके साथ विवाह कर लिया। कहते हैं कि इसके पीछे उन्होंने एक अपूर्व पुस्तक रची, जिसका नाम गीत-गोविन्द रक्खा।

एक समय जयदेवजी तीर्थ-यात्रा करते करते श्रीवृन्दावन से जयनगर वा जयपुर जा रहे थे कि मार्ग में चोरों ने उनको लूट लिया और उनके हाथ पाँव काट डाले। दैव-इच्छा से किसी धार्मिक राजा के नौकर उधर होकर आ निकले और जयदेवजी की यह बुरी दशा देख कर उनको अपने राज में ले गये। उन्होंने वहीं उनकी दवा की। राजा जयदेवजी के गुणों से प्रसन्न होकर उनका बड़ा मान करने लगा, जो कुछ ये कहते थे वही करता था।

थोड़े दिनों में वही चोर साधुओं के भेस में भीख माँगते हुए राजा के द्वार पर आ निकले। जयदेव जी ने उन्हें तुरन्त पहचान लिया और चाहते तो अपना बदला चुका लेते; पर वे बड़े उदार और दयालु थे, उनके चित्त में बदला लेने का ध्यान तक न आया, वरन् बहुत कुछ दे उनका बड़ा सम्मान किया। सच है, महात्मा ऐसे ही होते हैं, अपने अपकारियों का भी उपकार करते हैं। चलते समय जयदेवजी ने उन चोरों का बड़ा आदर किया और उनको राज की सीमा तक पहुँचाने के लिए नौकर साथ कर दिये। राह में नौकरों ने चोरों से पूछा, "जयदेव जी ने और लोगों से विशेष आप का आदर क्यों किया !" इस

पर उन दुष्टों ने कहा, "पहले वे एक राजा के यहाँ नौकर थे, वहाँ उन्होंने ऐसा बुरा काम किया था कि राजा ने उनके मारने की आज्ञा दी थी; पर हम लोगों ने दया करके उनके हाथ ही पाँव काट कर छोड़ दिया। इस बात को छिपाने के लिए उन्होंने हमारा इतना आदर किया है"। सच है, शठ अपनी शठता नहीं छोड़ता। राजा ने यह सब हाल नौकरों से सुन जयदेवजी को बुला कर उनसे पुरानी कथा पूछी। जयदेवजी ने सच्चा हाल सब कह सुनाया। राजा को बड़ा अचंभा हुआ। जयदेवजी का और भी अधिक मान होने लगा।

थोड़े दिन पीछे उनकी स्त्री का देहान्त हुआ। उसके मरने से बहुत दुखी होकर जयदेवजी अपनी जन्मभूमि केंदुली को लौट आये और फिर जब तक जीये गोविंद भजन में मग्न रहे। वे परम वैष्णव थे। उनकी समाधि अभी तक केंदुली गाँव में बनी हुई है, और वहाँ हर साल मकर की संक्रांति पर बड़ा भारी मेला होता है। हज़ारों वैष्णव वहाँ उस समय इकट्ठा होते और उनकी समाधि के चारों ओर संकीर्तन करते हैं।

गीतगोविंद के सिवा जयदेवजी की बनाई और कोई पुस्तक देखने में नहीं आई। प्रसन्नराघव, चंद्रालोक आदिक पुस्तकें विदर्भनगर निवासी महादेव पण्डित के दूसरे पुत्र जयदेव की बनाई हुई हैं। गीतगोविन्द की रचना बड़ी अपूर्व है, उसमें बड़ा चमत्कार है, पढ़नेवालों का चित्त सहज में मोह लेती है। उसके एक एक पद में प्रेम-रस-भरी जयदेव जी की गाढ़ी भक्ति झलकती है। इसकी रचना ऐसी मधुर, कोमल और मनोहर

है कि ऐसी कविता संस्कृत भाषा में दूसरी नहीं है। इसका अनुवाद अँगरेज़ी, जर्मन, लैटिन आदि योरोप की कई भाषाओं में हो गया है। हिन्दी पद्य में भी इसके तीन अनुवाद हैं; एक राजा डालचंद की आज्ञा से रायचंद-कृत, दूसरा अमृतसर के प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरिदास कृत, और तीसरा बनारस के बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु कृत, है। मरहठी, बंगाली आदि भाषाओं में भी अनेक अनुवाद हैं। गीतगोविंद दक्खिन में बहुत गाया जाता है और बालाजी में सीढ़ियों पर द्राविड़ अक्षरों में खुदा हुआ है।

पाठ २०

समय

गोसाईं तुलसीदासजी ने बहुत ठीक कहा है—

"हानि लाभ जीवन मरन यश अपयश विधि हाथ"।

जिसका आशय यह है कि मरना जीना तो ईश्वर ने अपने ही हाथ में रक्खा है। जिसकी आयु ईश्वर ने जितनी नियत कर दी है उसे जो संसार के सारे वैद्य इत्यादि इकट्ठा होकर एक पल भर भी बढ़ाना चाहें तो बढ़ नहीं सकती। इसको छोड़ संसार में जो हानि है उसका कुछ न कुछ पलटा हो सकता है, परन्तु नहीं है तो समय का। जो घड़ी बीत गई वह फिर तुम्हारे हाथ नहीं आ सकती। विचार कर देखो तो काल या समय की गति की उपमा किसी से ठीक ठीक नहीं दी जा सकती।

पर उन दुष्टों ने कहा, "पहले वे एक राजा के यहाँ नौकर थे, वहाँ उन्होंने ऐसा बुरा काम किया था कि राजा ने उनके मारने की आज्ञा दी थी; पर हम लोगों ने दया करके उनके हाथ हो पाँव काट कर छोड़ दिया। इस बात को छिपाने के लिए उन्होंने हमारा इतना आदर किया है"। सच है, शठ अपनी शठता नहीं छोड़ता। राजा ने यह सब हाल नौकरों से सुन जयदेवजी को बुला कर उनसे पुरानी कथा पूछी। जयदेवजी ने सच्चा हाल सब कह सुनाया। राजा को बड़ा अचंभा हुआ। जयदेवजी का और भी अधिक मान होने लगा।

थोड़े दिन पीछे उनकी स्त्री का देहान्त हुआ। उसके मरने से बहुत दुखी होकर जयदेवजी अपनी जन्मभूमि केंदुली को लौट आये और फिर जब तक जीये. गोविंद भजन में मग्न रहे। वे परम वैष्णव थे। उनकी समाधि अभी तक केंदुली गाँव में बनी हुई है, और वहाँ हर साल मकर की संक्रांति पर बड़ा भारी मेला होता है। हज़ारों वैष्णव वहाँ उस समय इकट्ठा होते और उनकी समाधि के चारों ओर संकीर्तन करते हैं।

गीतगोविंद के सिवा जयदेवजी की बनाई और कोई पुस्तक देखने में नहीं आई। प्रसन्नराघव, चंद्रालोक आदिक पुस्तकें विदर्भनगर निवासी महादेव पण्डित के दूसरे पुत्र जयदेव की बनाई हुई हैं। गीतगोविन्द की रचना बड़ी अपूर्व है, उसमें बड़ा चमत्कार है, पढ़नेवालों का चित्त सहज में मोह लेती है। उसके एक एक पद में प्रेम-रस-भरी जयदेव जी की गाढ़ी भक्ति

कती है। इसकी रचना ऐसी मधुर, कोमल और मनोहर

है कि ऐसी कविता संस्कृत भाषा में दूसरी नहीं है। इसका अनुवाद अँगरेज़ी, जर्मन, लैटिन आदि योरोप की कई भाषाओं में हो गया है। हिन्दी पद्य में भी इसके तीन अनुवाद हैं; एक राजा डालचंद की आज्ञा से रायचंद-कृत, दूसरा अमृतसर के प्रसिद्ध भक्त स्वामी रत्नहरिदास कृत, और तीसरा बनारस के बाबू हरिश्चन्द्र भारतेन्दु कृत, है। मरहठी, बंगाली आदि भाषाओं में भी अनेक अनुवाद हैं। गीतगोविंद दक्खिन में बहुत गाया जाता है और बालाजी के सीढ़ियों पर द्राविड़ अक्षरों में खुदा हुआ है।

पाठ २०

समय

गोसाईं तुलसीदासजी ने बहुत ठीक कहा है—

"हानि लाभ जीवन मरन यश अपयश विधि हाथ"।

जिसका आशय यह है कि मरना जीना तो ईश्वर ने अपने ही हाथ में रक्खा है। जिसकी आयु ईश्वर ने जितनी नियत कर दी है उसे जो संसार के सारे वैद्य इत्यादि इकट्ठा होकर एक पल भर भी बढ़ाना चाहें तो बढ़ नहीं सकती। इसको छोड़ संसार में जो हानि है उसका कुछ न कुछ पलटा हो सकता है, परन्तु नहीं है तो समय का। जो घड़ी बीत गई वह फिर तुम्हारे हाथ नहीं आ सकती। विचार कर देखो तो काल या समय की गति की उपमा किसी से ठीक ठीक नहीं दी जा सकती।

काल रेल से अधिक भागनेवाला, हवा से बढ़ कर उड़ने-वाला है और ऐसे दबे पाँव निकल जाता है कि किसी को जान नहीं पड़ता। सवेरा हुआ, सोकर उठे, जब तक नित्य कर्म से निपटे कुछ खाया, पिया, पहर दिन चढ़ आया; फिर घड़ी दो घड़ी इधर उधर उठे बैठे, कुछ पाठ याद किया कि दस बजने को आये; पाठ-शाला जाने को देर होती है झटपट खाया पिया, पाठशाला गये। वहाँ पाठ पढ़ा, चलो दिन ढला, साँझ हुई; घर आये तो फिर खाने पीने की सूझी; जब पेट भरा तो आलस लगा, लेटे तो आँख झपकी, सवेरा हो गया। ऐसे ही दिन बीतते चले जाते हैं। एक कवि का वचन है "सुबह होती है, शाम होती है, उम्र योंही तमाम होती है।"

जब समय की यह दशा है कि जो घड़ी बीती उस पर हमारा बस न रहा, तो अति आवश्यक है कि जो समय हमारे हाथ में है उसे हम व्यर्थ न जाने दें। लड़को! यह अवसर जो तुमको मिला है, इसे अच्छे कामों में लगाओ। अभी न तुमको खाने की चिन्ता है न कपड़े का सोच; जो कुछ तुमसे सीखते बन पड़े झट पट सीख लो कि तुम्हारे काम आये; नहीं तो पीछे पछताओगे और पछताना कुछ काम न आयेगा। यह समय जो अब तुमको मिला है वैसा नहीं है जो जवानी और बुढ़ापे में तुम्हारे आगे आयेगा। लड़कपन का समय जोतने और बोने का है और जवानी और बुढ़ापे का समय काटने और गाहने का। जो इस समय में तुम कुछ जोत बोय रक्खोगे तो जवानी और बुढ़ापे में गाह और काट सकोगे। तुम चाहो तो इस समय को इस तरह बिताओ कि

तक एक ही धारा चली गई है। जौंली और नानहूँ के बीच से तीन शाखा हो गई हैं। एक फ़तहगढ़ की ओर आई है, और शेष दो बुलन्दशहर और अलीगढ़ के ज़िलों में होकर जाती हैं। नानहूँ से एक और शाखा निकाली गई है जो इटावे की ओर जाकर यमुना में मिल गई है और नहर की मुख्य धारा मैनपुरी और कानपुर के ज़िलों में होती हुई कानपुर में गंगाजी में मिली है। भाऊपुर ज़िला कानपुर से एक शाखा काट कर ज़िला फ़तहपुर में लाई गई है। नानहूँ में नहर की चौड़ाई अस्सी फुट है, पर कानपुर में आकर बीस फुट रह गई है। कुल लम्बाई मायापुर से कानपुर तक साढ़े तीन सौ मील है और शाखाओं को मिला कर कुल नहर लगभग नौ सौ मील तक फैली हुई है। इसके दोनों ओर पेड़ लगे हुए हैं और नहरों के समीप पक्के घाट और पुल बने हैं।

यह नहर अँगरेज़ों की चतुराई, बुद्धिमानी और कारीगरी का अद्भुत नमूना है। जहाँ कुएँ नहीं थे वहाँ जल पहुँचता है। जहाँ कुएँ थे और दिन भर रहट, चरस वा फरवा चलाकर कठिनता से काम लायक़ पानी निकलता था, वहाँ अब बिना श्रम थोड़े व्यय से इच्छापूर्वक पानी मिल सकता है। जहाँ पानी न बरसने से अकाल पड़ने की संभावना होती थी वहाँ सभी ऋतुओं में खेती बिना मेह के दिन दूनी रात चौगुनी होती है, और इस बहुतायत से अन्न उपजता है कि जो हमारे किसानों के बड़ा श्रम करने पर भी पहिले न होता था। केवल यही नहीं, इन नहरों के द्वारा एक जगह का माल दूर दूर तक पहुँचाया जा सकता है ार लकड़ियाँ पहाड़ों अथवा जंगलों से दूर तक बहाई जाती हैं।

पाठ २२

पृथिवी

पृथिवी जिस पर हम रहते हैं नारंगी सी गोल है, इसी कारण इसको संस्कृत में भूगोल कहते हैं। हम लोगों को यह चपटी देख पड़ती है। इसका कारण यह है कि पृथिवी बहुत बड़ी और हम लोग बहुत छोटे हैं। चौरस मैदान में साढ़े तीन हाथ का मनुष्य २$\frac{1}{२}$ मील आगे की धरती पर पड़ी हुई वस्तु को नहीं देख सकता। कितने ही दूर तक क्यों न चले जायँ पृथिवी का अन्त नहीं मिलता; इससे मूर्ख लोग यह समझते हैं कि पृथिवी चक्की के पाट के समान गोल है और उसका कहीं ओर छोर नहीं है। हम यहाँ तुमको यह बतावेंगे कि पृथिवी का ओर छोर है और इसका आकार गोल है। सब जानते हैं कि आकार उसी वस्तु का हो सकता है जिसका अन्त हो; जो अन्त नहीं है तो उसका आकार भी नहीं है। लोग यह कहते हैं कि पृथिवी की सीमा नहीं है तो इसका आकार भी नहीं है। पर जब हम खुले मैदान में ऊँचे टीले पर खड़े होकर चारों ओर देखते हैं तो थोड़ी दूर पर ऐसा जान पड़ता है कि मानों पृथिवी और आकाश मिल गये हैं और पृथिवी समथल सी दिखाई पड़ती है। उस ठिकाने से जहाँ पृथिवी और आकाश मिले हुए जान पड़ते हैं, आगे कुछ नहीं देख पड़ता और जो कुछ देख भी पड़ता है तो ऊँची वस्तुओं की चोटियाँ मात्र दिखाई देती हैं। ऐसी ही सीमा हम प्रत्येक स्थान पर चारों ओर देखेंगे और यह सीमा हम से एक ही दूर पर

पूरब, पच्छिम, उत्तर, दक्खिन घेरे के आकार की होगी। इसको क्षितिज कहते हैं। जो हम और ऊँचाई पर चले जायँ तो भी वही घेरा जाना जायगा, परन्तु कुछ दूर के टीले आदि और भी दिखाई देने लगेंगे। इसी कारण अगले लोग पृथिवी को चक्की के पाट की नाईं गोल बतलाते थे; और क्योंकि जितनी ही दूर चढ़ते जायँ उतनी ही धरती और देख पड़ती है, इसले पृथिवी का अन्त नहीं माना। हम देखते हैं कि सूरज दिन दिन पूरब से निकल कर पश्चिम में डूबता है। जो पृथिवी का अन्त नहीं है तो क्या सूरज धरती में चला जाता है और उससे फिर निकल आता है? इसको तो सब जानते हैं कि एक ही सूरज दिन दिन निकलता है दूसरा नहीं होता।

लोगों से हम सुनते हैं कि एक बड़ा पहाड़ है जिसकी आड़ में सूरज छिप जाता है; पर हम तो कोई पहाड़ नहीं देखते; केवल इतना ही देखते हैं कि सूरज धरती के पास आकर नीचे धँस जाता है। जो पृथिवी का अन्त न मानें तो सूरज के आने जाने का एक रास्ता भी मानना पड़ेगा, पर सूरज कभी उत्तर की ओर आ जाता है और कभी दक्खिन की ओर चला जाता है, तो यह राह भी उतनी ही चौड़ी होगी। तारे और चन्द्रमा भी पूरब की ओर से निकलते और पच्छिम में डूबते हैं और दूसरे दिन फिर पूरब में निकलते हैं, तो उनके आने जाने की भी राह होगी। इससे प्रत्यक्ष है कि पृथिवी बिना रोक और चारों ओर से खुली है और इसके चारों ओर तारे आदि घूम सकते हैं। पृथिवी असीम नहीं है, अर्थात् इसकी सीमा है, और अन्त भी वहीं हैं जहाँ हम लोग रहते हैं और इस सीमा के आगे हवा है।

जब पृथिवी की सीमा निश्चित हो गई तो यह समझना कठिन नहीं कि पृथिवी गोल है। भास्कराचार्य्य ने अपने सिद्धान्त-शिरोमणि के गोलाध्याय में लिखा है कि पृथिवी के आधों आध के रहनेवाले नीचे सिर किये हुए ऐसे खड़े हैं जैसे नदी के तीर पर खड़े हुए मनुष्य की परछाईं पानी में देख पड़ती है, उनके ऊपर ऐसा ही आकाश है, वे भी हमारी तरह चलते फिरते हैं। यही कारण है कि जिससे लोग जहाज़ों पर चल कर पूरब की ओर चलते चलते अपने ठिकाने पहुँच जाते हैं, जैसे वृत्त की परिधि के किसी स्थान से अँगुली चलाने से फिर वह घूम कर वहीं पहुँच जाती है।

यह भूगोल स्थिर नहीं है, वरन अपनी कीली पर चक्कर करता हुआ सूर्य्य के चारों ओर घूमता है। एक चक्कर २४ घंटे में पूरा होता है और इसी से रात दिन होते हैं। जो भाग सूर्य्य के सामने रहता है उसमें दिन और दूसरे में रात होती है।

सूर्य्य की परिक्रमा की रीति बदलती है। यह परिक्रमा ३६५ दिन और ६ घण्टे में पूरी होती है। इसी को एक वर्ष कहते हैं। अँगरेज़ी बरस ३६५ दिन का होता है। ६ घण्टे की कमी पूरी करने के लिए चौथे वर्ष एक दिन बढ़ा कर फ़र्वरी के महीने के २९ दिन कर दिये जाते हैं।

पाठ २२

महाराजा रणजीतसिंह

पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह का नाम किसने नहीं सुना है। सरकार अँगरेज़ बहादुर के बढ़ते सूर्य्य के प्रताप के आगे

जिनके तेज का प्रकाश मलिन न हुआ और जिन्होंने सारे पंजाब को अपने अधीन कर लिया और अफ़ग़ानिस्तान के पठान भी जिनका लोहा मान गये, वह सिक्ख जाति के वीर पुरुष महासिंह के पुत्र थे। महाराजा रणजीतसिंह का जन्म ईसवी सन् १७८० में नवम्बर महीने की दूसरी तारीख़ को हुआ था। रणजीतसिंह आठ बरस के न होने पाये थे कि महासिंह का देहान्त हो गया। इसी कारण उनको शिक्षा बहुत ही थोड़ी हुई। पर वे ऐसे बुद्धिमान् थे कि बड़े बड़े उनकी बराबरी नहीं कर सकते थे। अपनी बुद्धि के बल से बीस ही बरस की अवस्था में लाहौर के राज पर बैठे। धीरे धीरे अटक, काश्मीर, मुलतान और पंजाब के सारे [illegible] अपने अधीन कर लिये और पठानों से पेशावर भी छीन लिया।

सन् १८०८ ईसवी में रणजीतसिंह ने अपनी सेना सतलज के पार उतारी और यमुना को अपने राज्य की सीमा बनाना चाहा। यह देख कर लार्ड मिन्टो ने, जो उस समय हिन्दुस्तान के गवर्नर जनरल थे, सर चार्लर्स मेटकाफ़ को उनके पास भेजा। महाराजा ने मेटकाफ़ साहब का बड़ा आदर किया और सोच विचार कर अँगरेज़ों से मेल कर लिया और सन् १८०९ ईसवी में सतलज के पार से अपनी सेना हटाकर सन्धिपत्र लिख दिया। फिर जीते जी अँगरेज़ों से कभी बिगाड़ न किया और सदा अपने वचन पर दृढ़ रहे। उन्होंने काबुल के बादशाह शाहशुजा से कोहनूर हीरा ले लिया था। इस हीरे को वे सदा अपने पास रखते थे। उनके पास सब प्रकार की सेना मिला कर दो लाख दस हज़ार थी। सिपाहियों क़वायद सिखलाने के लिए उन्होंने बहुत से योरोप देशी नौकर

रक्खे थे। उन सबमें जनरल विनच्यूरा नामक फ़रासीसी सबसे प्रसिद्ध था। करोड़ रुपये से ऊपर की जागीरें रणजीतसिंह ने लोगों को दे रक्खी थीं।

रणजीतसिंह डील डौल में छोटे थे। उनकी एक आँख शीतला में जाती रही थी। परन्तु उनके मुँह पर वीरता और तेजस्वीपन दमकता था। लड़ाई में उनका सामना कोई नहीं कर सकता था। कैसी ही घोर आपत्ति पड़े वे कभी घवड़ाते न थे और डर तो मानों उनके पास फटकता ही न था। राज-सभा में उनके दर-बारी एक से एक वढ़िया कपड़ा पहिन कर आते थे, पर वे सादे ही कपड़े पहिनते थे। महाराजा सिवा पंजावी और हिन्दुस्तानी के और [illegible] भाषा नहीं जानते थे। उनको घोड़े पर चढ़ने का वड़ा शौक़ था। वे प्रातःकाल उठ घोड़े पर चढ़ घूमने जाया करते थे; फिर दरवार में दोपहर तक काम काज करते थे। खाना आठ ही बजे खा लेते थे। दरवार से उठ कर थोड़ी देर विश्राम करते थे। फिर उनके गुरु आकर उन्हें ग्रन्थ सुनाते थे। सायङ्काल दरवार करके घोड़े पर चढ़ घूमने जाया करते थे। उनको शिकार का वड़ा शौक़ था, सतलज और रावी के वीच के जंगलों में आखेट को जाया करते थे।

सन १८३७ ई० के फ़र्वरी महीने में उनके पास एक साधु आया। उसने कहा कि मुझे संदूक़ में वंद कर दो और मैं उसमें विना खाये पिये वहुत दिन तक रह सकता हूँ। महाराजा ने उसकी वात पर विश्वास करके परीक्षा लेनी चाही। साधु को एक लकड़ी के संदूक़ में वंद करके उसमें ताला लगा एक

कोठरी में रखवा दिया। जिस घर में यह कोठरी थी उसमें भी ताले लग गये। यह घर एक उपवन में था और उसके चारों ओर दीवार थी। उपवन का द्वार बन्द करके पहरे बैठा दिये गये। चालीस दिन पीछे महाराज बहुत से सरदारों और अँगरेज़ों के साथ वहाँ गये। संदूक निकलवा कर खोला, देखा तो साधु पद्मासन मारे बैठा है। पहिले उसके ऊपर गुन-गुना पानी छोड़ कर आटे का गरम रोट उसके सिर पर रक्खा गया; उसके हाथ पाँव फैलाये गये; उसके पलक और ओठों पर घी मला गया। आसवर्न साहिब, जो उस समय वहाँ उपस्थित थे, लिखते हैं कि मुझको नाड़ी नहीं मिलती थी और उसकी आँखें मुर्दे के सदृश हो रही थीं। थोड़ी ही देर में साधु सचेत हुआ और उसने बोलने का यत्न किया। पहिले तो वह न बोल सका, परन्तु थोड़ी देर में बोलने को समर्थ हुआ। यह देख कर महाराज बहुत प्रसन्न हुए और अपने हाथ से उस के गले में अमूल्य सोने की एक माला पहना दी और बहुत कुछ भेट देकर उसे विदा किया।

रणजीतसिंह पढ़े लिखे तो बहुत कम थे, परन्तु उनकी बुद्धि बड़ी विलक्षण थी। मनुष्यों की उन्हें बड़ी पहिचान थी, रूप देखते ही आदमी की नस नस जान लेते थे। उनकी सभा में शूर, बुद्धिमान् और चतुर एक से एक बढ़ कर थे। उन्होंने सबको चुन चुन कर रक्खा था। दीनों का दुख जानने के लिये उन्होंने एक बड़ा सुगम उपाय निकाला था। अपने भवन की कोठरी में संदूक रखवा दिया था। वहाँ किसी को आने की रोक टोक

न थी। उस संदूक़ में खाँचा काट दिया था। दीन अपना दुख पत्र में लिख कर उसमें डाल जाया करते थे। रणजीतसिंह पत्रों को पढ़ कर, जहाँ तक बनता था, उनका दुख दूर करने का प्रयत्न करते थे। इस कारण उनकी प्रजा उनसे बहुत प्रसन्न रहती थी।

रणजीतसिंह ने तीन विवाह किये थे। पहिली रानी का नाम महताब कुँवरि, दूसरी का नाम राजकुँवरि था और तीसरी दलीपसिंह की माँ चाँदकुँवरि थीं। सन् १८३९ ई० में जून महीने की सत्ताइसवीं तारीख़ को संध्या समय रणजीतसिंह अट्ठावन बरस की अवस्था में इस असार संसार को छोड़ परलोक सिधारे। मरने के थोड़ी देर पहिले तक इनको बराबर चेत रहा। मरते समय उन्होंने पुण्य दान भी बहुत किया। मरने के दिन एक करोड़ से अधिक दान किया था। महाराजा रणजीतसिंह की समाधि लाहौर के क़िले के समीप बनी हुई है।

पाठ २४

कोलम्बस

चार सौ बरस पहिले पृथ्वी के पूर्वी गोलार्द्ध अर्थात एशिया, यूरुप और अफ़्रीका के रहनेवाले यह नहीं जानते थे कि अटलांटिक महासागर के दूसरी ओर भी दुनिया बसती है। इस बस्ती को सबसे पहिले कोलम्बस ने ढूँढ़ा और इसी से इसको नई दुनिया कहते हैं। कोलम्बस का नाम क्रिस्टोफ़र कोलन था और यह इटली देश के जेनोआ नगर का रहनेवाला था। इसका

जन्म सन् १४४६ ईसवी में हुआ था। इसका बाप बड़ा कंगाल था; इस कारण लड़कपन में इसकी शिक्षा भली भाँति नहीं होने पाई; तो भी कोलम्बस ने कुछ लैटिन भाषा और थोड़ी सी गणित-विद्या सीख ली थी। भूगोल-विद्या में इसका चित्त बहुत लगता था। जहाज़ चलानेवालों को खगोल-विद्या का काम बहुत पड़ता है, इसलिए इसने भी इस विद्या को सीखा। पढ़ना छोड़ने के पीछे इसने मल्लाही का काम सीखा और धीरे धीरे एक जहाज़ का प्रधान हो गया। सन् १४७० ईसवी में कोलम्बस ने इटली देश के रहनेवाले एक धनी की लड़की से विवाह कर लिया। इस लड़की ने अपने बाप के साथ जहाज़ों पर दूर दूर की यात्रा की थी और इसके पास पृथिवी के बहुत से नक़शे थे, जिनको कोलम्बस बहुत चाह से देखा करता था। उन दिनों लोग हिन्दुस्तान का हाल अच्छी तरह न जानते थे, और यह समझते थे कि हिन्दुस्तान अटलांटिक महासागर के पश्चिम ओर है। नक़शों को देखने से कोलम्बस को इस बात का ठीक ठीक पता लगाने की इच्छा हुई। उसने कई बादशाहों से प्रार्थना की कि वे इसे अपनी ओर से जहाज़ में हिन्दुस्तान का ठीक ठीक पता लगाने के लिए भेजें। सब बादशाह यह बात सुन कर उसके साहस पर हँसते थे। बड़ी कठिनाइयों से स्पेन के बादशाह ने यह काम अपने ऊपर लिया और तीन जहाज़ तैयार कराये। जब यात्रा का सब सामान हो गया तो मल्लाहों की ढूँढ़ मची। क्योंकि ऐसी कठिन यात्रा करना कौन स्वीकार करता है। मल्लाह ज्यों त्यों बुझा कर नौकर रक्खे गये। १४६२ ईसवी के अगस्त

महीने की तीसरी तारीख़ को कोलम्बस ने जहाज़ का लङ्गर उठाया और पश्चिम की ओर चला। जब चलते चलते दो महीने हो गये और किसी टापू का पता न लगा, तब मल्लाह बहुत बिगड़े और कोलम्बस को धोखा देकर मार डालने की इच्छा करने लगे। कोलम्बस भी जैसा अवसर देखता था उसी के अनुसार उन्हें समझाता, बुझाता और धमकाता था। एक दिन दूर से पक्षी उड़ते देख थल का अनुमान कर वह उसी ओर चला। कई दिन पीछे उसने लकड़ी के टुकड़े और फलदार पेड़ की डालियाँ समुद्र में बहती देखीं। इससे उसने समझ लिया कि धरती समीप है। थोड़ी देर में उसे कुछ दूर पर उजाला दिखाई दिया और धीरे धीरे जहाज़ एक टापू के पास पहुँच गया। उस टापू पर उतर कर कोलम्बस ने परमेश्वर की स्तुति की। वहाँ के निवासी नंगे रहते थे; वे जहाज़ देख कर बड़ा अचरज करने लगे। कोलम्बस और उसके साथियों को उन्होंने देवता समझा और उनका बड़ा आदर किया। इस टापू का नाम उसने सेंटसालवेडर रक्खा। इस प्रकार कोलम्बस ने उस टापू के उत्तर ओर जाकर बहुत से टापुओं के झुंड के झुंड देखे। उनमें क्यूबा टापू सबसे प्रसिद्ध है। फिर उसको हेटी टापू मिला। इसके पीछे वह सन १४९३ ईसवी के मार्च महीने की पन्द्रहवीं तारीख़ को अपने देश को लौट आया। वहाँ उसका बड़ा आदर हुआ। स्पेन के बादशाह ने उसका सब वृत्तांत सुना। उन छः मनुष्यों को देख कर, जिनको कोलम्बस वहाँ से अपने साथ लाया था, वह बहुत प्रसन्न हुआ। इस प्रकार कोलम्बस ने दो यात्रायें और कीं.

और बहुत से नये टापू ढूँढ़ निकाले। १४९८ में वह तीसरी बार गया और एक टापू में पहुँचा जहाँ के लोग आपस में लड़ भिड़ रहे थे। उसने जाकर मेल मिलाप करा दिया, परन्तु वहाँ के थोड़े से लोगों ने अप्रसन्न हो स्पेन के बादशाह के पास एक निवेदनपत्र भेजा, जिसमें कोलम्बस की अत्यन्त निन्दा की और उस पर अनेक दोष लगाये। इसको पढ़ बादशाह ने क्रोध में आ कोलम्बस को पद-हीन कर उसके स्थान पर दूसरे पुरुष को भेज दिया और उसको आज्ञा दी कि कोलम्बस को पकड़ कर भेज दे। उसने कोलम्बस के पैरों में बेड़ियाँ डाल कर भेज दिया। राह में जहाज़ के कप्तान ने उसको अपमान से बचाने के लिए कहा कि बेड़ियों की कोई आवश्यकता नहीं है; यदि आप की आज्ञा हो तो बेड़ियाँ निकलवा दूँ। कोलम्बस ने उत्तर दिया कि मैं उनको पहने रहूँगा जब तक कि बादशाह उनको कटवाने की आज्ञा न दे, और तब भी उन को अपने पास रक्खूँगा जिसमें कि बादशाह की अकृतज्ञता का चिह्न मेरे पास बना रहे। इस उत्तर से ही कोलम्बस की धीरता और उदारता झलकती है। स्पेन देश के सब मनुष्य इस उत्तम और उपकारी पुरुष का अपमान देख कर दुखित हुए। जब वह बादशाह के सन्मुख आया तब बादशाह ने सब हाल सुनकर उसको तुरत छुड़वा दिया और दण्ड देने के बदले उसको बहुत पारितोषिक दे बिदा किया। कोलम्बस ने बेड़ियाँ अपने पास सावधानी से रख छोड़ीं और मरने के पहिले यह आज्ञा दी कि यह बेड़ियाँ मेरी देह के साथ गाड़ी जायँ। सन् १५०२

सवीं में इसने चौथी यात्रा की और सन् १५०६ ई० के मई महीने
ो बीसवीं तारीख़ को वह परलोक सिधारा। जो देश कोलम्बस
ढूँढ़ निकाले थे वे अब वेस्ट इन्डीज़ (अर्थात् पश्चिमी हिन्दुस्तान)
ार दक्षिणी अमेरिका कहलाते हैं। कोलम्बस यह समझता था कि
हिन्दुस्तान ही के भाग हैं। उस समय तक यह कोई न जानता
ा कि वे देश हिन्दुस्तान के भाग नहीं हैं। इसके बहुत दिन पीछे
रप वालों को हिन्दुस्तान का पता लगा और इसी कारण
ोलम्बस के ढूँढ़े हुए देशों को अलग करने के लिए अँगरेज़
न्दुस्तान को पहले ईस्ट इंडीज़ अर्थात् पूर्वी हिन्दुस्तान कहते थे।

पाठ २५

ओस, कुहरा, बादल और ओला

जिस हवा में हम लोग साँस लेते हैं उसमें पानी की भाफ
दा मिली रहती है। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं है जहाँ
ानी किसी न किसी रूप में न रहता हो। पानी में यह गुण है
ि कि इसमें से सदा भाफ उठा करती है। इसके साथ ही यह
ी सिद्ध है कि एक जगह की हवा दूसरी जगह जाया करती है।
सके भाफ सब जगह फैला करती है। पानी की भाफ जितनी
उठती है सब हवा में रहती है, और जिसे हम सूखना कहते हैं
ह पानी की भाफ बन कर निकल जाने का दूसरा नाम है।
किसी छिछले बर्तन में पानी भर दो तो चार घंटे पीछे देखोगे
कि उसमें से पानी उड़ गया। अब तुम आपही विचार करो
कि यह पानी कहाँ चला गया। काँच के बर्तन में तो गया ही नहीं,

क्योंकि ऐसा होता तो उसका बोझ बढ़ जाता। इससे जाना जाता है कि पानी भाफ बन कर हवा में मिल गया। इस भाफ को फिर पानी के रूप में करके दिखाना कुछ कठिन नहीं है। किसी काँच या धातु के बर्तन को उजले कपड़े से पोंछ कर उसमें बर्फ़ तोड़ कर भर दो और यह देख लो कि बर्फ़ का टुकड़ा बर्तन के बाहर न निकला रहे। दो चार पल बीते बर्तन, जो बाहर से चमकता है, धुँधला हो जायगा और अँगुली से छूने पर उसमें चिह्न बन जायगा। बर्तन की वही दशा हो जायगी जो कुहरे में रखने से हो जाती है। बर्फ़ में थोड़ा सा नोन डाल दें तो बर्तन के बाहर की ओर पाले के छोटे छोटे टुकड़े जम जायँगे। इस रीति से जाना जाता है कि पानी, जो हवा में भाफ के रूप में मिला रहता है, ठंढक पाने से छोटी छोटी बूँद बन कर बर्तन पर जम जाता है, क्योंकि बर्फ़ गल कर बर्तन के बाहर नहीं आ सकती।

यह तो प्रगट ही है कि जब भाफ हवा में मिली रहती है तब जहाँ हवा जायगी वहाँ वह भी साथ रहेगी। हवा गरम होगी तो वह भी गरम होगी और ठंडी हुई तो ठंडी। हवा और भाफ का भेद गरमी सरदी से जाना जाता है। जब गरमी बढ़ती है भाफ बहुत उठती है, क्योंकि गरमी से बहुत सा पानी भाफ बन कर हवा में मिल जाता है और ठंडक से फिर पानी बन जाता है। यह सबने देखा होगा कि जब पतीली में पानी गरम किया जाता है, सनसनाने लगता है और पानी के बुलबुले बनकर नीचे से ऊपर आते हैं। पतीली के ऊपर एक ठंडी थाली लगाने से वही भाफ थाली पर पानी की बूँद बन कर जम जाती है। इसके

कारण यह है कि भाफ थाली पर पहुँचते ही ठंडक पाकर फिर पानी बन जाती है। थाली बहुत ही ठंडी हो, यहाँ तक कि पाला से भी अधिक ठंडी हो, तो बर्फ़ के छोटे छोटे टुकड़े थाली पर बन जाते हैं।

भाफ हवा में सदा रहती है। अब हवा का ठंडा होना समझ में आने से भाफ का पानी बनना भी समझ में आ जायगा। यह तो सब ही जानते हैं कि रात में दिन से अधिक ठंडक होती है, इसलिए रात के समय घास भी ठंडी हो जाती है। यहाँ एक बात पर विचार कर लेना चाहिये कि पत्थर इतने ठंडे नहीं होते और न उन पर ओस देख पड़ती है। इसका कारण यह है कि घासफूस ठंडे होने से धरती की गरमी से गरम नहीं होते। कंकड़-पत्थर में धरती से गरमी लेने की अधिक शक्ति है। यह वही शक्ति है जिससे लोहे की छड़ का एक सिरा आग में रखने से दूसरा सिरा भी, जो आग में नहीं है, गरम हो जाता है। इसी से बहुत सी वस्तुएँ रात में इतनी ठंडी नहीं होतीं जैसी पत्तियाँ हो जाती हैं। जब यह पत्तियाँ ठंडी हो जाती हैं, जो भाफ से भरी हवा इनके पास आती है वह भी ठंडी हो जाती है, और भाफ पानी की बूँद बन कर पत्तियों पर मोती सी जम जाती है। इससे तुम जान लोगे कि यह बात ठीक नहीं कि ओस आकाश से गिरती है। जो कोई यह बात कहे कि ओस खुली ही जगहों में देख पड़ती है तो इसका कारण और है। जो गरमी दिन में पृथिवी में समा जाती है वह रात में निकलती है और ऊपर फैलती है। इसको कुछ रुकावट न हुई तो यह आकाश को चली जाती है और जो धुआँ भी बीच में आ गया तो लौट आती है। इसी कारण जिस

क्योंकि ऐसा होता तो उसका बोझ बढ़ जाता। इससे जाना जाता है कि पानी भाफ बन कर हवा में मिल गया। इस भाफ को फिर पानी के रूप में करके दिखाना कुछ कठिन नहीं है। किसी काँच या धातु के बर्तन को उजले कपड़े से पोंछ कर उसमें बर्फ़ तोड़ कर भर दो और यह देख लो कि बर्फ़ का टुकड़ा बर्तन के बाहर न निकला रहे। दो चार पल बीते बर्तन, जो बाहर से चमकता है, धुँधला हो जायगा और अँगुली से छूने पर उसमें चिह्न बन जायगा। बर्तन की वही दशा हो जायगी जो कुहरे में रखने से हो जाती है। बर्फ़ में थोड़ा सा नोन डाल दे तो बर्तन के बाहर की ओर पाले के छोटे छोटे टुकड़े जम जायँगे। इस रीति से जाना जाता है कि पानी, जो हवा में भाफ के रूप में मिला रहता है, ठंढक पाने से छोटी छोटी बूँद बन कर बर्तन पर जम जाता है, क्योंकि बर्फ़ गल कर बर्तन के बाहर नहीं आ सकती।

यह तो प्रगट ही है कि जब भाफ हवा में मिली रहती है तो जहाँ हवा जायगी वहाँ वह भी साथ रहेगी। हवा गरम होगी तो वह भी गरम होगी और ठंडी हुई तो ठंडी। हवा और भाफ का भेद गरमी सरदी से जाना जाता है। जब गरमी बढ़ती है भाफ बहुत उठती है, क्योंकि गरमी से बहुत सा पानी भाफ बन कर हवा में मिल जाता है और ठंडक से फिर पानी बन जाता है। यह सबने देखा होगा कि जब पतीली में पानी गरम किया जाता है, सनसनाने लगता है और पानी के बुलबुले बनकर नीचे से ऊपर आते हैं। पतीली के ऊपर एक ठंडी थाली लगाने से वही भाफ थाली पर पानी की बूँद बन कर जम जाती है। इसका

कारण यह है कि भाफ थाली पर पहुँचते ही ठंडक पाकर फिर पानी बन जाती है। थाली बहुत ही ठंडी हो, यहाँ तक कि पाला से भी अधिक ठंडी हो, तो बर्फ़ के छोटे छोटे टुकड़े थाली पर बन जाते हैं।

भाफ हवा में सदा रहती है। अब हवा का ठंडा होना समझ में आने से भाफ का पानी बनना भी समझ में आ जायगा। यह तो सब ही जानते हैं कि रात में दिन से अधिक ठंडक होती है, इसलिए रात के समय घास भी ठंडी हो जाती है। यहाँ एक बात पर विचार कर लेना चाहिये कि पत्थर इतने ठंडे नहीं होते और न उन पर ओस देख पड़ती है। इसका कारण यह है कि घासफूस ठंडे होने से धरती की गरमी से गरम नहीं होते। कंकड़-पत्थर में धरती से गरमी लेने की अधिक शक्ति है। यह वही शक्ति है जिससे लोहे की छड़ का एक सिरा आग में रखने से दूसरा सिरा भी, जो आग में नहीं है, गरम हो जाता है। इसी से बहुत सी वस्तुएँ रात में इतनी ठंडी नहीं होतीं जैसी पत्तियाँ हो जाती हैं। जब यह पत्तियाँ ठंडी हो जाती हैं, जो भाफ से भरी हवा इनके पास आती है वह भी ठंडी हो जाती है, और भाफ पानी की बूँद बन कर पत्तियों पर मोती सी जम जाती है। इससे तुम जान लोगे कि यह बात ठीक नहीं कि ओस आकाश से गिरती है। जो कोई यह बात कहे कि ओस खुली ही जगहों में देख पड़ती है तो इसका कारण और है। जो गरमी दिन में पृथिवी में समा जाती है वह रात में निकलती है और ऊपर फैलती है। इसको कुछ रुकावट न हुई तो यह आकाश को चली जाती है और जो धुआँ भी बीच में आ गया तो लौट आती है। इसी कारण जिस

क्योंकि ऐसा होता तो उसका बोझ बढ़ जाता। इससे जाना जाता है कि पानी भाफ बन कर हवा में मिल गया। इस भाफ को फिर पानी के रूप में करके दिखाना कुछ कठिन नहीं है। किसी काँच या धातु के बर्तन को उजले कपड़े से पोंछ कर उसमें बर्फ़ तोड़ कर भर दो और यह देख लो कि बर्फ़ का टुकड़ा बर्तन के बाहर न निकला रहे। दो चार पल बीते बर्तन, जो बाहर से चमकता है, धुँधला हो जायगा और अँगुली से छूने पर उसमें चिह्न बन जायगा। बर्तन की वही दशा हो जायगी जो कुहरे में रखने से हो जाती है। बर्फ़ में थोड़ा सा नोन डाल दे तो बर्तन के बाहर की ओर पाले के छोटे छोटे टुकड़े जम जायँगे। इस रीति से जाना जाता है कि पानी, जो हवा में भाफ के रूप में मिला रहता है, ठंढक पाने से छोटी छोटी बूँद बन कर बर्तन पर जम जाता है, क्योंकि बर्फ़ गल कर बर्तन के बाहर नहीं आ सकती।

यह तो प्रगट ही है कि जब भाफ हवा में मिली रहती है तब जहाँ हवा जायगी वहाँ वह भी साथ रहेगी। हवा गरम होगी तो वह भी गरम होगी और ठंढी हुई तो ठंढी। हवा और भाफ का भेद गरमी सरदी से जाना जाता है। जब गरमी बढ़ती है भाफ बहुत उठती है, क्योंकि गरमी से बहुत सा पानी भाफ बन कर हवा में मिल जाता है और ठंढक से फिर पानी बन जाता है। यह सबने देखा होगा कि जब पतीली में पानी गरम किया जाता है, सनसनाने लगता है और पानी के बुलबुले बनकर नीचे से ऊपर आते हैं। पतीली के ऊपर एक ठंढी थाली लगाने से वही भाफ थाली पर पानी की बूँद बन कर जम जाती है। इसक

कारण यह है कि भाफ थाली पर पहुँचते ही ठंडक पाकर फिर पानी बन जाती है। थाली बहुत ही ठंडी हो, यहाँ तक कि पाला से भी अधिक ठंडी हो, तो बर्फ़ के छोटे छोटे टुकड़े थाली पर बन जाते हैं।

भाफ हवा में सदा रहती है। अब हवा का ठंडा होना समझ में आने से भाफ का पानी बनना भी समझ में आ जायगा। यह तो सब ही जानते हैं कि रात में दिन से अधिक ठंडक होती है, इसलिए रात के समय घास भी ठंडी हो जाती है। यहाँ एक बात पर विचार कर लेना चाहिये कि पत्थर इतने ठंडे नहीं होते और न उन पर ओस देख पड़ती है। इसका कारण यह है कि घासफूस ठंडे होने से धरती की गरमी से गरम नहीं होते। कंकड़-पत्थर में धरती से गरमी लेने की अधिक शक्ति है। यह वही शक्ति है जिससे लोहे की छड़ का एक सिरा आग में रखने से दूसरा सिरा भी, जो आग में नहीं है, गरम हो जाता है। इसी से बहुत सी वस्तुएँ रात में इतनी ठंडी नहीं होतीं जैसी पत्तियाँ हो जाती हैं। जब यह पत्तियाँ ठंडी हो जाती हैं, जो भाफ से भरी हवा इनके पास आती है वह भी ठंडी हो जाती है, और भाफ पानी की बूँद बन कर पत्तियों पर मोती सी जम जाती है। इससे तुम जान लोगे कि यह बात ठीक नहीं कि ओस आकाश से गिरती है। जो कोई यह बात कहे कि ओस खुली ही जगहों में देख पड़ती है तो इसका कारण और है। जो गरमी दिन में पृथिवी में समा जाती है वह रात में निकलती है और ऊपर फैलती है। इसको कुछ रुकावट न हुई तो यह आकाश को चली जाती है और जो धुआँ भी बीच में आ गया तो लौट आती है। इसी कारण जिस

रात में वादल हों और हवा न चलती हो उस रात को बड़ी उमस होती है और ओस नहीं जमती।

ओस पत्तों के ठंडे होने से जमती है; पर भाफ से भरी हुई वहुत सी हवा ठंडी हो जाय तो जितनी भाफ उसमें रहती है, उसमें से वहुत सी पानी बन जाती है। यह बात जाड़े के दिनों में वहुधा देखने में आती है कि रात को ठंडक से हवा ठंडी हो जाती है और पानी की छोटी छोटी बूँदें धरती पर गिरने लगती हैं। इसको कुहरा कहते हैं। कुहरा वहुधा उन जगहों पर पड़ता है जहाँ दलदल हो। कुहरा धरती से मिला हुआ ऊपर देख पड़ता है; पर भाफ सब जगह है और ज्यों ज्यों ऊपर चढ़े त्यों त्यों ठंडक अधिक होती जाती है। इसीलिए जब वहुत सी भाफ मिली हवा उठ कर ऊपर जायगी तो वह तुरन्त कुहरे का रूप बन जायगी। इसको वादल कहते हैं। वादल भी कुहरा ही है, अन्तर केवल इतना है कि वादल उस कुहरे को कहते हैं जो बहुत ऊँचे पर हवा में बनता है। वादल की बनावट समझना वहुत कठिन है। पानी हवा से ७०० गुना भारी है, इसलिए संदेह होता है कि वह हवा में कैसे ठहर सकता है, क्योंकि भारी वस्तु तुरन्त नीचे आजाती है। जब तक पानी भाफ के रूप में रहता है तब तक उसके हवा में रहने में संदेह नहीं है, क्योंकि भाफ हवा से हलकी होती है। परन्तु यह बात समझ में नहीं आती कि पानी हवा में कैसे ठहर सकता है। एक विद्वान् का अनुमान ठीक जान पड़ता है। वह कहते हैं कि वादल दो ही तरह के होते हैं; एक बनता हुआ, दूसरा घुलता हुआ। भाफ ऊपर को उठती है और ठंडी होकर वादल बनती है;

यह बनते हुए बादल कहे जाते हैं। घुलते हुए बादल वह हैं कि जिनमें भाफ ठंडक से पानी बनती जाती और नीचे को गिरती जाती है। जब यह भाफ छोटी छोटी बूँदों के रूप में नीचे गिरती है और ऐसी हवा में होकर आती है जो ऊपर की हवा से गरम होती है; तब ये बूँदें फिर भाफ बन जाती हैं और धरती तक नहीं आने पातीं। जब बादल ठंडा हो जाता है पानी बरसने लगता है। दूर से छोटी छोटी बूँदें धरती पर आती हैं और एक दूसरे से मिल-कर बड़ी हो जाती हैं। पानी बहुधा उन्हीं जगहों में बरसता है जहाँ किसी कारण बादल को ठंडक पहुँचती है। बादल की चाल के सामने से ठंडी हवा आवे तो तुरन्त ही पानी बरसेगा। जो समुद्र से आती हुई हवा, जिसमें भाफ बहुत होती है, पृथिवी पर आ के किसी पहाड़ से टक्कर खाय तो उस पहाड़ पर पानी बरसेगा। इसका कारण यही है कि हवा टक्कर खाकर ऊपर उठती है और ऊपर उठने से ठंडी हो जाती है। पानी की बूँदें जो बादल के ठंड होने से बनती हैं, बहुत ठंडी हवा के परत में होकर जाने से तुरन्त ही जम जाती हैं, और बर्फ़ के छोटे टुकड़े बन जाते हैं। बर्फ़ में चिप-कने की शक्ति होने के कारण इसके टुकड़े एक दूसरे से मिल कर बड़े होते और पृथिवी पर गिरते हैं। इन्हें हम लोग ओला या पत्थर कहते हैं। ये पत्थर नहीं हैं, पर इनके गिरने से खेती की उतनी ही हानि होती है जितनी पत्थर गिरने से होती, इसी से इनका यह नाम पड़ा।

पाठ २६

अकबर

हुमायूँ बादशाह के पीछे जगद्विख्यात अबुल मुजफ़्फ़र जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर साढ़े तेरह बरस की अवस्था में हिन्दुस्तान के बादशाह हुए। उनके लड़कपन में बैरमख़ाँ ख़ानख़ाना राज्य का प्रबन्ध करता था। बदख़शाँ के बादशाह सुलेमान शाह ने काबुल पर अपना अधिकार कर लिया। यह सुन कर बैरमख़ाँ अकबर को लेकर पंजाब होता हुआ काबुल पहुँचा। इधर हेमूँ बनिये ने तीस हज़ार सेना लेकर दिल्ली और आगरा जीत लिया; और पञ्जाब की ओर अकबर के जीतने को आगे बढ़ा। बैरमख़ाँ ने यह सुन कर शीघ्र ही दिल्ली को बाग मोड़ी। पानीपत में हेमूँ से घोर युद्ध हुआ, जिसमें हेमूँ मारा गया और बैरमख़ाँ की जीत हुई। इस विजय से बैरमख़ाँ को इतना गर्व हो गया कि वह अकबर को भी तुच्छ समझने लगा। परिणामदर्शी अकबर उसकी यह चाल देख बहाने से निकल दिल्ली चले आये और वहाँ १५६० ईसवी में यह विज्ञापन दिया कि राज्य का सब काम हमने अपने हाथ में ले लिया है। बैरमख़ाँ खिसिया कर बादशाह से फिर गया, परन्तु बादशाही फ़ौज से हार कर बादशाह की शरण में आया। अकबर ने उसके सब अपराध क्षमा किये और भारी पिनशन नियत कर दी। तब, बैरम को मक्का जाते समय मार्ग में एक पठान ने मार डाला। (इसी बैरम का पुत्र अब्दुर्रहीमख़ाँ ख़ानख़ाना संस्कृत और हिन्दी भाषा का बड़ा पण्डित और कवि हो गया है)। इस प्रकार अठारह बरस की अवस्था में अकबर इतने

बड़े राज्य के अधिकारी हुए। उन्होंने अपनी बुद्धि से यह बात सोच ली कि बिना हिन्दुओं का मन हाथ में लिये राज्य स्थिर नहीं रह सकता, क्योंकि इनके पिता हुमायूँ को यहाँ के निवासियों ने बात की बात में निकाल दिया था। इन्होंने हिन्दू मुसलमान दोनों को बड़े बड़े अधिकार दिये, जोधपुर और जयपुर के राजाओं की बेटियों से विवाह कर उनसे सम्बन्ध कर लिये। उन्होंने मत का आग्रह छोड़ दिया, यहाँ तक कि हिन्दुओं के कई तोड़े हुए मन्दिर उन्होंने फिर से बनवा दिये। लखनऊ, जौनपुर, ग्वालियर, अजमेर इत्यादि राज्य के आरम्भ ही में उनके अधीन हो गये। सन् १५६१ ईसवी में मालवा भी, जो अब तक राजा बाज़बहादुर के अधिकार में था, उनके सेनापति ने जीत लिया। राजा के पकड़ जाने पर उनकी रानी दुर्गावती बड़ी वीरता से लड़ी और दो बार बादशाही सेना को इन्होंने भगा दिया, परन्तु तीसरी लड़ाई में जब हार गईं तब आत्मघात करके मर गईं। अकबर ने बाज़बहादुर को सभासद् बना कर अपने पास रक्खा। सन् १५६८ ईसवी में अकबर ने चित्तौर का क़िला घेरा। राना उदयसिंह पहाड़ों में चले गये, परन्तु उनके परम प्रसिद्ध वीर जयमल सेनाध्यक्ष ने क़िले की बड़ी सावधानी से रक्षा की। एक रात को जयमल क़िले की बुर्जों की मरम्मत करा रहा था कि अकबर ने दूरबीन से देख कर ऐसी गोली मारी कि जयमल गिर पड़ा। इस सेनाध्यक्ष के मरने से क्षत्रिय लोग ऐसे उदास हुए कि सब बाहर निकल आये। स्त्रियाँ तो चिता पर जल गईं और पुरुष मात्र लड़ाई में जूझ मरे। इस युद्ध में जितने क्षत्रिय मारे गये उन सब के जनेऊ अकबर ने

तौलाये तो साढ़े चौहत्तर मन हुए। इसी से चिट्ठियों पर ७४॥ लिखते हैं, अर्थात् जिसके नाम की चिट्ठी है उसके सिवा और कोई खोले तो उसे चित्तौड़ तोड़ने का पाप हो। यद्यपि चित्तौड़ का क़िला टूटा, परन्तु वह वहुत दिनों तक वादशाही अधिकार में नहीं रहा। राना उदयसिंह के पुत्र राना प्रतापसिंह ने लड़ भिड़ कर वादशाही सेना को काटा। मानसिंह का तिरस्कार करने से अकबर की आज्ञा से सन् १५७६ ई० में जहाँगीर और महतावख़ाँ के साथ बड़ी सेना लेकर मानसिंह ने राना पर चढ़ाई की। प्रतापसिंह ने हलदीघाटी नामक स्थान पर वड़ा भारी युद्ध किया, जिसमें वाईस हज़ार राजपूत काम आये। इस पर भी राना ने हार न मानी और लड़ते ही रहे और अपने वाप के नाम से उदयपुर का नगर भी वसाया। विहार, कश्मीर, सिन्ध और दक्खिन के सव राज्य अकबर ने जीत लिये। अहमदनगर के युद्ध में सन् १६०० ई० में चाँद सुलताना, वहाँ के वादशाह की चाची ने, वड़ी वीरता दिखाई। इसी समय युवराज सलीम ने अपने वाप से विगड़ कर इलाहावाद आदि अपने अधिकार में कर लिये। अकबर ने उसका अपराध क्षमा करके उसे वङ्गाल और विहार का अधिकारी वनाया। सन् १५८३ ई० में युसुफ़ज़इयों की लड़ाई में अकबर के प्रिय सभासद महाराज वीरवल मारे जा चुके थे, और अवुलफ़ज़ल को जहाँगीर के विद्रोह के समय उरछा के राजा ने मार डाला था। अपने प्रिय पुत्र मुराद और दानियाल के भी अति मद्यपान से मर जाने के समाचार अकबर को मिले। इतने प्रियवर्ग के मारे जाने से इनका चित्त ऐसा दुखी हुआ कि वीमार होकर

६२ बरस की अवस्था में आगरे में इन्होंने इस असार संसार को त्याग दिया।

अकबर अति बुद्धिमान् और परिणामदर्शी थे। आलस्य तो उनको छू नहीं गया था। प्रथम अवस्था में तो कुछ भोजन पानादि का व्यसन भी था, किन्तु अवस्था वढ़ने पर यह बड़े ही सावधान होगये थे। वरस में तीन महीना मांस नहीं खाते थे। इतवार को मांस की दूकानें बन्द रहती थीं। जिज़िया का कर और गोहिंसा उन्होंने उठा दी थी। सती होना भी वन्द कर दिया था। कर का भी वन्दोवस्त अच्छा किया था। राजा टोडरमल, अबुल-फज़ल, खानखाना, मानसिंह, तानसेन, गङ्गकवि, जगन्नाथ पंडित-राज और महाराज वीरवल आदि सब प्रकार के चुने हुए मनुष्य इनकी सभा में रहते थे। कागज़, हुंडी, वही आदि का नियम इन्हीं टोडरमल का वाँधा हुआ है। अकवर ने विधवा-विवाह के प्रचार में भी उद्योग किया था और तीर्थों का कर भी छुड़ा दिया था। इनके समय में राज्य पंद्रह सूवों में वँटा हुआ था और भूमि की उपज से तिहाई लिया जाता था।

पाठ २७

चाणक्यनीति-सार.

जिस मनुष्य ने लड़कपन में विद्या नहीं सीखी, जवानी में धन संचित नहीं किया, अधेड़ होकर धर्म नहीं किया, वह चौथेपन में क्या कर सकेगा ?

उत्तम पुरुष को नम्रता से, शूर को भेद से, नीच को दान से और बराबरवाले को बल से जीते।

उत्तम पुरुष अपने गुणों से, मध्यम पिता के गुणों से, अधम मामा के नाम से और अधम से अधम ससुर के नाम से प्रसिद्ध होते हैं।

क्षमा के बराबर तप नहीं, संतोष के बराबर सुख नहीं, तृष्णा के बराबर व्याधि नहीं, दया के बराबर धर्म नहीं।

जैसे बिना सुगंध टेसू का फूल शोभा नहीं देता वैसे ही बिना विद्या के रूप, लक्षण और अच्छे कुल वाला पुरुष भी अच्छा नहीं लगता।

आलसी पुरुष को विद्या कहाँ, बिना विद्या के धन कहाँ, धन बिना मित्र नहीं और मित्र बिना बल नहीं होता।

दुर्बल को राजा का, बालक को रोने का, मूर्ख को मौन रहने का और चोर को झूठ का बल होता है।

किसके कुल में दोष नहीं है ? व्याधि से कौन बचा है ? दुख किसने नहीं पाया है ? सुख सदा किसको रहता है ?

आचार से कुल, भाषा से देश, संदेह से स्नेह, और शरीर की दशा से भोजन जाना जाता है।

कन्या को अच्छे कुल में देना, पुत्र को विद्या में, शत्रु को व्यसन में और मित्र को धर्म में लगाना उचित है।

कोयल का रूप स्वर है, स्त्री का रूप पतिव्रत, कुरूप का रूप विद्या और तपस्वी का रूप क्षमा है।

अति रूप से सीता हरी गई, अति गर्व से रावण मारा गया, अति दान से बलि बाँधा गया—अति सब जगह वर्जित है।

प्रियवादी के शत्रु नहीं होता, समर्थ को कोई भार बहुत नहीं, यात्री को कोई देश दूर नहीं, विद्वान् को कहीं विदेश नहीं।

उद्यम वाले को दरिद्रता नहीं व्यापती, जप करने वाले को पाप, मौन से कलह और जागने से भय नहीं होता।

राजा एक बार आज्ञा देते हैं, पंडित एक ही बार कहते हैं, कन्या एक ही बार दी जाती है।

दयाहीन देश को, विद्याहीन गुरु को और स्नेह-शून्य भाई को त्याग देना उचित है।

दान से दरिद्रता दूर होती है, सुन्दर स्वभाव से दुर्बुद्धि का नाश होता है और अच्छी बुद्धि से अज्ञान मिट जाता है।

परदेश में विद्या मित्र है, घर में भार्या मित्र है, रोगी को औषध मित्र है, मरे पर धर्म मित्र है।

क्षुधा के समान शरीर में दुख, विद्या के समान शरीर का भूषण, चिंता के समान शरीर का शोषण और क्षमा के समान शरीर की रक्षा करने वाला कोई नहीं है।

विद्याधन सब धनों से उत्तम है, उसको न चोर चुरा सकता है, न राजा छीन सकता है, न भाई बँटा सकता है, और न भार है, देने से नित्य बढ़ता है।

लक्ष्मी, प्राण, जीवन, यौवन, संसार, ये सब चलायमान हैं; परन्तु एक धर्म ही अचल है।

लोभी को अर्थ से, साधु को नम्रता से, मूर्ख को उसकी इच्छा पूरी करने से वश में करना चाहिए।

सेवक की युद्ध में, भाई बन्धु की दुख में, मित्र की विपत्ति में और भार्य्या की दरिद्रता में परीक्षा होती है।

पुत्र वह है जो पिता का भक्त हो; पिता वह है जो पुत्र का पालन करे; मित्र वह है जिसमें विश्वास हो; और भार्य्या वह है जिसमें सुचित्तता हो।

शरीर अनित्य है और विभव सदा नहीं रहता। मृत्यु नित्य सिर पर खड़ी है; इससे धर्म-संग्रह करना उचित है।

जैसे तृण-रहित भूमि पर गिरी हुई अग्नि कुछ नहीं कर सकती और अपने आपही बुझ जाती है, ऐसे ही जो मनुष्य क्षमारूपी खड्ग हाथ में लिये है, उसका कोई दुर्जन कुछ भी नहीं कर सकता।

क्षण में तो क्रोध और क्षण ही में प्रसन्न, ऐसे अव्यवस्थित चित्त वाले से सदैव डरते रहना चाहिए।

उद्यम, साहस, धैर्य, बल, बुद्धि, पराक्रम ये छहों गुण जिसमें हैं उससे दैव भी डरता है।

एक सुपुत्र से सिंहिनी निर्भय रहती है, परन्तु गदही दस पुत्र के होते भी बोझा ढोती है।

मूर्ख उपदेश करने से और बिगड़ता है, शान्त नहीं होता, जैसे सांप को दूध पिलाने से विष ही बढ़ता है।

वन, पर्वत आदि दुर्गम स्थानों में भीलों के साथ घूमना अच्छा है परन्तु मूर्ख मनुष्य का संग स्वर्ग में भी बुरा है

दुष्ट विद्वान् भी हो तो मणि से भूषित सर्प के तुल्य है, उससे क्यों न डरना चाहिए ?

दुष्ट जो प्रिय, भी बोले तो भी उसका विश्वास न करना चाहिए, क्योंकि उसकी जीभ के सिरे पर तो मधु है, परन्तु हृदय में हलाहल विष भरा है।

जो हित करे वह बन्धु है और जो द्रोह करे—चाहे सगा भाई भी क्यों न हो—शत्रु के तुल्य है।

वे माता-पिता शत्रु हैं जिन्होंने अपने बालक को नहीं पढ़ाया ; वह पंडितों की सभा में ऐसा लगता है जैसे हंसों में बगला।

विद्वान् राजा से अधिक है, क्योंकि राजा तो अपने देश ही में पूज्य है, परन्तु विद्वान सब देशों में पूजनीय है।

संसार-रूपी कटु वृत्त में दो फल अमृत के तुल्य हैं; एक प्रिय वचन, दूसरा सत्संग।

पाठ २८

बीरबल की सच्ची सेवकाई

बहुत दिन हुए एक चक्रवर्ती राजा—जिसका नाम शूद्रक था—बड़ा प्रतापी, धर्मात्मा और बुद्धिमान् हो गया है। एक दिन वह मन्त्रियों के साथ राजसभा में बैठा था कि द्वारपाल ने आकर निवेदन किया—"महाराज स्त्री-समेत एक राजकुमार दक्षिण से नौकरी के लिए आया है, यदि आज्ञा हो तो आपके सम्मुख उपस्थित करूँ ?" राजा ने कहा, "ले आओ"। जब बीरबल सभा में गया तो राजा ने उससे पूछा, "यहाँ आगमन कैसे हुआ ?" बीरबल

बोला, "महाराज! आपका यश सुन कर नौकरी के लिए आया हूँ"। राजा ने पूछा, "तुम क्या महीना लोगे?" वह बोला, "प्रति दिन सहस्र मुद्रा लूँगा।" राजा ने पूछा, "तुम्हारे साथ कितने मनुष्य हैं?" उसने कहा, "एक स्त्री, दूसरा बेटा, तीसरी, बेटी, चौथा मैं; पाँचवाँ मेरे साथ कोई नहीं है"। उसकी यह बात सुन कर राजसभा के सब लोग मुँह फेर फेर कर हँसने लगे; पर राजा ने अपने जी में सोचा कि इसने जो इतना धन माँगा, इसमें कुछ भेद है। फिर उसने सोचा कि बहुधा दिया हुआ धन व्यर्थ नहीं जाता, किसी न किसी दिन सफल होता ही है। अपने भंडारी को बुला कर आज्ञा दी कि इसको प्रति दिन सहस्र रुपये दिया करो। बीरबल उस दिन रुपये पाकर अपने घर गया और आधे रुपये ब्राह्मणों को बाँटे; चौथाई से अन्धे, लूले, लँगड़ों आदि को भोजन कराया और जो बचा उससे अपना और अपने कुटुम्ब का पालन किया। इसी रीति से वह प्रति दिन अपना पालन करता और रात को ढाल तलवार बाँध कर राजद्वार पर पहरा देता था। रात को जब कभी राजा नींद से चौंक कर पुकारता कि द्वार पर कौन है, तो सदा वह यही उत्तर देता कि बीरबल है, और राजा जो कुछ आज्ञा देता उसका पालन करता। कुछ दिन राज-सेवा में इसी रीति से बीते।

एक समय दक्षिण दिशा में रात को किसी स्त्री के रोने का शब्द सुनाई दिया। राजा ने नींद से चौंक कर पुकारा, "द्वार पर कौन है?" बीरबल ने कहा, "मैं हूँ, क्या आज्ञा है?" राजा ने कहा, "जहाँ स्त्री रो रही है वहाँ जाओ और उससे रोने का कारण

पूछो"। राजा भी इस बात की परीक्षा करने के लिए कि 'सच-मुच वह वहाँ जाता है या नहीं' चुपके से उसके पीछे हो लिया। क्योंकि सच्चा सेवक वही है, जो समय कुसमय अपने स्वामी के काम आवे और सदा उसकी आज्ञा-पालन करे। बीरबल वहीं गया जहाँ से रोने का शब्द आता था। वहाँ जा कर क्या देखता है कि गहनों से लदी एक बड़ी रूपवती स्त्री धाड़ मार कर रो रही है; कभी नाचती, कभी कूदती, कभी दौड़ती है; आँखों में आँसू की बूँद नहीं, पर सिर पीट पीट, हाय हाय कर धरती पर पछाड़ खा कर गिरती है। यह लीला देख बीरबल ने उससे पूछा, "तू क्यों रोती पीटती है, कौन है, और तुझको क्या दुःख है, जिसके दूर करने का यत्न किया जाय?" वह बोली, "मैं राजा शूद्रक की लक्ष्मी हूँ; वह महात्मा कल मर जायगा; मैंने उसके घर में बहुत सुख पाया है और पछतावा इस बात का है कि फिर मैं किसके यहाँ जा कर रहूँगी; यही मेरे रोने पीटने का कारण है"। बीरबल ने कहा, "कोई ऐसा भी उपाय है जिससे राजा न मरे और उसके साथ तेरा अटल वास रहे?" लक्ष्मी ने कहा, "इसका उपाय बड़ा कठिन है; तुझसे होने का नहीं"। जब बीरबल ने वचन दिया कि मैं इसका उपाय यथाशक्ति करूँगा तब लक्ष्मी ने कहा, "यदि तू अपने लड़के को प्रसन्न मन से कल्याणी देवी की भेंट दे तो राजा चिरञ्जीवी हो जाय। लड़के के पाँव उसकी माँ और बहन पकड़े रहें और वह भी अपना भेंट होना प्रसन्न मन से स्वीकार करे तो यह हो सकता है, नहीं तो नहीं।" यह कह लक्ष्मी अन्तर्द्धान हो गई। बीरबल अपने घर की ओर चला और राजा भी चुपके से उसके पीछे हो लिया

वीरवल ने अपने घर पहुँच कर बेटा, बेटी और स्त्री को जगाया और सब ब्यौरा उनको कह सुनाया। बेटा बोला, "पिता ! जग में उसी का जीना सफल है जो स्वामी के काम आवे। मैं तैयार हूँ। एक तो आपकी आज्ञा, दूसरे स्वामी का काम, तीसरे यह देह देवता पर चढ़ेगी, इससे बढ़ कर और क्या होगा ? मेरी समझ में अब इस काम में देर करना उचित नहीं है"।

वीरवल ने फिर अपनी स्त्री से कहा, "जो तुम प्रसन्न मन से अपने लड़के को दो तो मैं राजा के लिए उसे देवी की भेंट कर दूँ"। वह बोली, "मुझे बेटा, बेटी, भाई, बन्धु, माँ बाप किसी से कुछ काम नहीं, मेरी तो गति तुम्हीं तक है। धर्मशास्त्र में भी लिखा है कि नारी न दान से शुद्ध होती है न व्रत से। लँगड़ा, लूला, गूँगा, बहरा, अन्धा, काना, कोढ़ी, कुबड़ा जैसा उसका पति हो उसी की सेवा करना उसका मुख्य धर्म है और जो कितना ही धर्म करे और उसका कहा न माने तो नरक में पड़े"। फिर उसकी लड़की बोली, "जो माँ विष दे लड़की को और बाप बेचे पूत को और राजा ले सर्वस्व तो शरण किसकी जाय ?" निदान चारों यह सोच कर कि बिना यह कठिन काम किये न तो हम राजा से उऋण होंगे और न हमारा परलोक में निस्तार होगा, मरने को उद्यत हो गये।

फिर चारों देवी के मन्दिर की ओर चले और राजा भी उनके पीछे हो लिया। वीरवल मन्दिर में पहुँचा। देवी की पूजा कर हाथ जोड़ वह बोला, "हे देवी ! मेरे बेटे के भेंट देने से राजा चिरञ्जीवी हो जाय"। फिर ऐसा हाथ मारा कि लड़के का सिर धरती पर लोटने लगा। भाई का मरना देख उसकी लड़की ने

अपने तलवार मार गला काट डाला। बेटे बेटी को मरा देख वीरबल की स्त्री ने भी अपने कण्ठ पर ऐसी तलवार मारी कि धड़ से सिर जुदा हो गया। इन तीनों का मरना देख वीरबल अपने मन में सोच करने लगा कि जब लड़के ही मर गये तो नौकरी किसके लिए करूँगा। यह सोच कर राजा की दीर्घायु के लिए देवी से प्रार्थना करते हुए अपने को भी देवी को चढ़ा दिया। वीरबल की और उसके कुटुम्ब की ऐसी अद्भुत और सच्ची स्वामी-भक्ति देख राजा मन में सोचने लगा कि मेरे ऐसे कितने जीव नित्य जीते मरते हैं, पर इनके समान लोक में न कोई है, न होगा। मेरे कारण इनके कुटुम्ब का नाश हुआ। ऐसे राज्य करने से क्या जिसके लिए एक का सर्वनाश हो और एक राज्य करे। ऐसा राज्य करना धर्म नहीं है। यह विचार कर राजा चाहता ही था कि अपना भी गला काट डाले कि देवी ने प्रकट होकर उस का हाथ पकड़ लिया और बोली, "बेटा! हम तेरे साहस से प्रसन्न हैं, जो चाहे वर माँग"। राजा ने कहा, "माता, जो तू मुझ से प्रसन्न हुई है तो चारों को जिला दे"। देवी के प्रसाद से ऐसा ही हुआ और वीरबल कुटुम्ब के साथ अपने घर को गया। राजा भी छिप कर अपने मन्दिर को चला गया।

जब वीरबल राजद्वार पर पहुँचा तब राजा ने उससे पूछा, "तुम उस स्त्री का क्या समाचार लाये?" वीरबल ने यह उत्तर दिया, "एक दुखिया रोती थी, उसको समझा बुझा कर चला आया हूँ"। उसकी यह उदारता देख राजा बहुत प्रसन्न हुआ और सबेरा होते ही उसने सभा में सब मन्त्रियों को बुलवा कर

वीरबल का सारा वृत्तांत कह सुनाया । यह अचरज की बात सुन कर सब वीरबल की बड़ाई करने लगे । राजा ने भी आधा राज्य उसको दे दिया।

धन्य है वह सेवक जिसने स्वामी के लिए अपने जीव और कुटुम्ब को अर्पण कर दिया। धन्य है वह राजा जो सेवक के लिए राज पाट छोड़ अपने प्राण को तिनके के बराबर जान बलि-दान करने पर उद्यत हुआ।

पाठ २६

सुदामाचरित्र

(प्रेमसागर से)

श्रीशुकदेवजी बोले कि महाराज ! अब मैं सुदामा की कथा कहता हूँ कि जैसे वह प्रभु के पास गया और उसका दरिद्र कटा, सो मन दे सुनो। दक्षिण दिशा की ओर है एक द्रविड़ देश, तहाँ विप्र और वणिक बसते थे नरेश, जिनके राज में घर घर होता था भजन सुमिरन और हरि का ध्यान, पुनि सब करते थे तप, यज्ञ, धर्म दान और साधु संत, गौ ब्राह्मण का सन्मान।

ऐसे वे बसहिं तेहिं ठौर। हरि बिन कछू न जानैं और ॥

किसी देश में सुदामा नाम ब्राह्मण श्रीकृष्णचन्द्र का गुरुभाई, अति दीन, तन छीन, महादरिद्री, ऐसा कि जिसके घर पै न बास, न खाने को कुछ पास, रहता था। एक दिन सुदामा की स्त्री दरिद्र से अति घबराय, महा दुःख पाय, पति के निकट जाय, भय खाय, डरती काँपती बोली, "महाराज! अब इस दरिद्र के हाथ

इतनी कथा कह श्रीशुकदेव जी बोले महाराज ! सुदामा वन उपवन की शोभा निरख, पुरी के भीतर जाय देखे तो कंचन के मणिमय मन्दिर महा सुन्दर जगमगाय रहे हैं, ठाँव ठाँव अथाइयों में यदुवंशी इन्द्र की सी सभा किये बैठे हैं; हाट बाट, चौहाटों में नाना प्रकार की वस्तु बिक रही हैं; घर घर जिधर तिधर गान, दान, हरिभजन और प्रभु का यश हो रहा है, और सारे नगर-निवासी महा आनन्द में हैं। महाराज ! यह चरित्र देखता देखता और श्रीकृष्णचन्द्र का मन्दिर पूछता पूछता सुदामा जा प्रभु की सिंहपौर पर खड़ा हुआ। इसने किसी से डरते डरते पूछा, "श्रीकृष्णचन्द्र जी कहाँ विराजते हैं?" उसने कहा, "देवता ! आप मन्दिर के भीतर जाओ, सन्मुख ही श्रीकृष्ण जी रत्नसिंहासन पर बैठे हैं"।

महाराज ! इतना वचन सुन सुदामा जो भीतर गया तो देखते ही श्रीकृष्णचन्द्र, सिंहासन से उतर आगे बढ़, भेंट कर, अति प्यार से हाथ पकड़, उसे ले गये। पुनि, सिंहासन पर बैठाय, पाँव धोवाय, चरणामृत लिया। आगे चन्दन चर्च, अक्षत लगाय, पुष्प चढ़ाय, धूप दीप कर, प्रभु ने सुदामा की पूजा की।

इतनौ करि के जोरे हाथ। कुशल छेम पूछत यदुनाथ॥

इतनी कथा सुनाय श्रीशुकदेव जी ने राजा से कहा कि महाराज यह चरित्र देख श्रीरुक्मिणी समेत आठों पटरानियाँ और सोलह सहस्र एक सौ रानियाँ और सब यदुवंशी, जो उस समय वहाँ थे, मन ही मन यों कहने लगे कि इस दरिद्री, दुर्बल, मलीन, वस्त्रहीन ब्राह्मण ने ऐसा क्या अगले जन्म पुण्य किया था जो त्रिलोकीनाथ ने इसे इतना माना। महाराज ! अंतर्यामी श्रीकृष्ण-

इसका कारण क्या है, सो कृपा कर कहिये, जो मेरे मन का संदेह जाय"। सुदामा बोला, "हे प्रिये! यह माया बड़ी ठगनी है, इसने सारे संसार को ठगा है, ठगती है और ठगेगी, सो प्रभु ने मुझे दी और प्रेम की प्रतीत न की; मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी : इसी से मेरा चित्त उदास है"। ब्राह्मणी बोली, "स्वामी! तुमने तो श्रीकृष्णजी से कुछ न मांगा था, पर वे अन्तर्यामी घट घट की जानते हैं : मेरे मन में धन की वासना थी सो प्रभु ने पूरी की : तुम अपने मन में कुछ मत समझो"।

पाठ ३०

स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता

भारतवर्ष में ऐसे पढ़े लिखे मनुष्य कम होंगे जो आज कल स्त्रियों को मूर्खता के घोर अन्धकार में फँसा देख कर मन में दुखी न होते हों। स्त्रियों की अज्ञता से बहुत हानि होती है। एक तो जब तक यहाँ की स्त्रियाँ पढ़ लिख के चतुर न हो जायँगी तब तक देश की उन्नति न होगी। दूसरे बालकों की शिक्षा जैसी चाहिये वैसी नहीं हो सकती और इसी कारण लड़के सयाने होने पर वैसे पराक्रमी, साहसी, विद्वान् और गुणवान् नहीं होते जैसे कि पहले किसी समय में हुआ करते थे।

एक समय फ्रांस के बादशाह नेपोलियन बोनापार्ट ने किसी स्त्री से पूछा, "बताओ कौन कौन सी बातों की आवश्यकता है, जिन से पुरुष ठीक ठीक शिक्षा पायें?" स्त्री ने उत्तर दिया, "केवल पढ़ी लिखी माताओं की आवश्यकता है"। स्त्री ने बहुत ठीक कहा।

इसका कारण क्या है, सो कृपा कर कहिये, जो मेरे मन का संदेह जाय"। सुदामा बोला, "हे प्रिये ! यह माया बड़ी ठगनी है, इसने सारे संसार को ठगा है, ठगती है और ठगेगी, सो प्रभु ने मुझे दी और प्रेम की प्रतीत न की : मैंने उनसे कब माँगी थी जो उन्होंने मुझे दी : इसी से मेरा चित्त उदास है"। ब्राह्मणी बोली, "स्वामी ! तुमने तो श्रीकृष्णजी से कुछ न माँगा था, पर वे अन्तर्यामी घट घट की जानते हैं : मेरे मन में धन की वासना थी सो प्रभु ने पूरी की : तुम अपने मन में कुछ मत समझो"।

पाठ ३०

स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता

भारतवर्ष में ऐसे पढ़े लिखे मनुष्य कम होंगे जो आज कल स्त्रियों को मूर्खता के घोर अन्धकार में फँसा देख कर मन में दुखी न होते हों। स्त्रियों की अज्ञता से बहुत हानि होती है। एक तो जब तक यहाँ की स्त्रियाँ पढ़ लिख के चतुर न हो जायँगी तब तक देश की उन्नति न होगी। दूसरे बालकों की शिक्षा जैसी चाहिये वैसी नहीं हो सकती और इसी कारण लड़के सयाने होने पर वैसे पराक्रमी, साहसी, विद्वान् और गुणवान् नहीं होते जैसे कि पहले किसी समय में हुआ करते थे।

एक समय फ्रांस के बादशाह नेपोलियन बोनापार्ट ने किसी स्त्री से पूछा, "बताओ कौन कौन सी बातों की आवश्यकता है, जिन से पुरुष ठीक ठीक शिक्षा पायें ?" स्त्री ने उत्तर दिया, "केवल पढ़ी लिखी माताओं की आवश्यकता है"। स्त्री ने बहुत ठीक कहा।

मोह-जाल में फँसी बेचारी स्त्रियों की है। निरे अक्षर-बोध को शिक्षा कहना बड़े अनर्थ की बात है। शिक्षा उसको कहते हैं जिसके प्रभाव से कुबुद्धि का जड़ मूल से नाश हो जाता है, जिसके पढ़ने से भले बुरे का ज्ञान हो जाता है और बुद्धि बढ़ जाती है और धर्म में मति पहले से भी दृढ़ हो जाती है। यदि पहले से ही स्त्रियों को अच्छी अच्छी पुस्तकें पढ़ाई जायँ, तो अवश्य उनका कल्याण होगा; शिक्षा से उनके सुविचार और भी दृढ़ हो जायँगे; और धर्म में उनकी प्रीति दिन दूनी रात चौगुनी होती जायगी; उनका मन केवल अच्छी पुस्तकों के पढ़ने में लगेगा और यदि कोई बुरी पुस्तक उनके हाथ में धोखे से भी आ जायगी तो वे उससे घृणा कर अपने से दूर ही रक्खेंगी।

कुछ मनुष्य यह कहते हैं कि स्त्रियों को कभी न पढ़ाना चाहिए, क्योंकि यह नई बात है; पुराने समय में स्त्रियाँ नहीं पढ़ती थीं। क्या उस समय के लोग मूर्ख थे जो उनको नहीं पढ़ाते थे? यह इन लोगों का भ्रम है। स्त्रियों को विद्याहीन देख कर प्रसन्न होने वाले मनुष्यों से पूछना चाहिये कि यह उन्होंने कैसे जाना कि पहले स्त्रियाँ नहीं पढ़ती थीं। क्या वह नहीं जानते कि अगस्त्य, वशिष्ट आदि महर्षियों की स्त्रियाँ लोपामुद्रा, अनसूया, अरुंधती आदि बड़ी पंडिता थीं? क्या वे भूल गये हैं कि श्रीरघुकुल-शिरोमणि श्रीरामचन्द्र जी की स्त्री सीताजी विद्या में एकही थीं? क्या बिना पढ़े लिखे ही सीताजी ने लंका में अशोकवाटिका में रामचन्द्रजी के नाम की अंकित अँगूठी को देख हनूमान जी को राम का दूत समझ लिया था? जो जो बातें उस समय सीताजी

और हनूमान में हुई थी; क्या वे विना पढ़े लिखे ही सीताजी कर सकती थीं ? क्या विना पढ़े लिखे ही मंडन मिश्र की स्त्री "उभयभारती" ने अपने पति को शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में हार जाने के कारण अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार सन्यास धारण करने को उद्यत देख, स्वयं आप शंकराचार्य से शास्त्रार्थ कर अपने स्वामी को संन्यासी होने से बचाया था ? कहाँ तक लिखें लीलावती, विद्याधरी, द्रौपदी, मन्दोदरी, तारा, शकुन्तला, चन्द्रसखी, गार्गी, सुलभा आदि प्राचीन समय की स्त्रियाँ एक से एक पंडिता थीं। मीराबाई के भजन अब तक गाये जाते हैं। भोजप्रबन्ध में लिखा है कि राजा भोज के समय में स्त्रियों के पढ़ाने की एक बड़ी पाठशाला थी। इससे जान पड़ता है कि पहले समय की स्त्रियाँ आज कल की स्त्रियों के सदृश मूर्खा न थीं। यदि यह भी मान लिया जाय कि पहले स्त्रियाँ नहीं पढ़ती थीं, तो क्या यह बुद्धिमानी की बात है कि अब भी स्त्रियाँ मूर्ख ही बनी रहें ? पुराने समय में लोग रेल पर नहीं चढ़ते थे और एक देश से दूसरे देश में सैकड़ों कष्ट उठा कर पैदल जाते थे। क्या यह हमको उचित है कि हम भी रेल पर न चढ़ें और परदेश पैदल ही जायँ ? सच तो यह है कि चाहे चाल पुरानी हो चाहे नई, यदि वह चाल अच्छी है तो उसे ग्रहण करना ही चाहिए।

स्त्रियों के पढ़ाने से जो जो लाभ होंगे उन सबका वर्णन करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि विद्या के लाभ सब ही जानते हैं। आज कल की स्त्रियों की बातचीत मूर्खता के कारण बहुधा

चवाव से भरी रहती है। जहां दो तीन स्त्रियां आपस में बैठ बातचीत करने लगीं, तहाँ सिवा औरों की निन्दा अपवाद के कुछ नहीं होता। स्त्रियों को चाहिए कि रसोई आदि घर के धंधों से निपट वृथा बातें न करें और अच्छी अच्छी उत्तम पुस्तकें पढ़ें, सीना, पिरोना, टोपी काढ़ना, मोजे बुनना आदि सीखा करें। बे-काम बैठने से चित्त चारों ओर भटकता है और यदि उसको कुछ रुकावट नहीं होती तो बुरे कामों में प्रवृत्त हो जाता है। पढ़ने लिखने से वे अपने बच्चों का भी अच्छे प्रकार से पालन कर सकेंगी। बहुधा यह भी देखा गया है कि सौ मनुष्य मिल जुल कर इकट्ठे रह सकते हैं परन्तु तीन चार स्त्रियाँ आपस में मिल जुल कर नहीं रह सकतीं। यह सब मूर्खता से होता है।

स्त्रियों को पढ़ाने से हमारा यह आशय नहीं है कि उनको व्याकरण, शास्त्र, वेदान्त आदि ग्रन्थों को पढ़ाओ; न हमारा यह आशय है कि उनको अरबी, फ़ारसी, अँगरेज़ी भाषा पढ़ा कर मेम साहबा बना दो। हम यह चाहते हैं कि बहुत न हो सके तो उनको हिन्दी भाषा में ही इतनी शिक्षा कम से कम अवश्य दे दो जिससे वे अपने कर्तव्य को भली भाँति समझ जायँ और बहुत सी व्यवहार की बातों में निपुण होकर गृहस्थी के काम-काज चतुराई से कर सकें।

और हनूमान् में हुई थीं; क्या वे बिना पढ़े लिखे ही सीताजी कर सकती थीं? क्या बिना पढ़े लिखे ही मंडन मिश्र की स्त्री "उभयभारती" ने अपने पति को शंकराचार्य से शास्त्रार्थ में हार जाने के कारण अपनी प्रतिज्ञा के अनुसार संन्यास धारण करने को उद्यत देख, स्वयं आप शंकराचार्य्य से शास्त्रार्थ कर अपने स्वामी को संन्यासी होने से बचाया था? कहाँ तक लिखें लीलावती, विद्याधरी, द्रौपदी, मन्दोदरी, तारा, शकुन्तला, चन्द्रसखी, गार्गी, सुलभा आदि प्राचीन समय की स्त्रियाँ एक से एक पंडिता थीं। मीराबाई के भजन अब तक गाये जाते हैं। भोजप्रबन्ध में लिखा है कि राजा भोज के समय में स्त्रियों के पढ़ाने की एक बड़ा पाठशाला थी। इससे जान पड़ता है कि पहले समय की स्त्रियाँ आज कल की स्त्रियों के सदृश मूर्खा न थीं। यदि यह भी मान लिया जाय कि पहले स्त्रियाँ नहीं पढ़ती थीं, तो क्या यह बुद्धिमानी की बात है कि अब भी स्त्रियाँ मूर्ख ही बनी रहें? पुराने समय में लोग रेल पर नहीं चढ़ते थे और एक देश से दूसरे देश में सैकड़ों कष्ट उठा कर पैदल जाते थे। क्या यह हमको उचित है कि हम भी रेल पर न चढ़ें और परदेश पैदल ही जायँ? सच तो यह है कि चाहे चाल पुरानी हो चाहे नई, यदि वह चाल अच्छी है तो उसे ग्रहण करना ही चाहिए।

स्त्रियों के पढ़ाने से जो जो लाभ होंगे उन सबका वर्णन करना आवश्यक नहीं है, क्योंकि विद्या के लाभ सब ही जानते हैं। आज कल की स्त्रियों की बातचीत मूर्खता के कारण बहुधा

ावाद से भरी रहती है। जहां दो तीन स्त्रियां आपस में बैठ ातचीत करने लगीं, तहाँ सिवा औरों की निन्दा अपवाद के ुछ नहीं होता। स्त्रियों को चाहिए कि रसोई आदि घर के धंधों े निपट वृथा बातें न करें और अच्छी अच्छी उत्तम पुस्तकें पढ़ें, ीना, पिरोना, टोपी काढ़ना, मोजे बुनना आदि सीखा करें। -काम बैठने से चित्त चारों ओर भटकता है और यदि उसको कुछ ुकावट नहीं होती तो बुरे कामों में प्रवृत्त हो जाता है। पढ़ने ुखने से वे अपने बच्चों का भी अच्छे प्रकार से पालन कर केंगी। बहुधा यह भी देखा गया है कि सौ मनुष्य मिल जुल र इकट्ठे रह सकते हैं परन्तु तीन चार स्त्रियाँ आपस में मिल ुल कर नहीं रह सकतीं। यह सब मूर्खता से होता है।

स्त्रियों को पढ़ाने से हमारा यह आशय नहीं है कि उनको याकरण, शास्त्र, वेदान्त आदि ग्रन्थों को पढ़ाओ; न हमारा यह ाशय है कि उनको अरबी, फ़ारसी, अँगरेज़ी भाषा पढ़ा कर ेम साहबा बना दो। हम यह चाहते हैं कि बहुत न हो सके तो नको हिन्दी भाषा में ही इतनी शिक्षा कम से कम अवश्य दे ा जिससे वे अपने कर्तव्य को भली भाँति समझ जायँ और बहुत ी व्यवहार की बातों में निपुण होकर गृहस्थी के काम-काज तुराई से कर सकें।

पाठ ३१

महाराजा परीक्षित् का वृत्तांत

(प्रेमसागर से)

महाभारत के अंत में जब श्रीकृष्ण अंतर्द्धान हुए तब पाण्डव तो महादुखी हो हस्तिनापुर का राज परीक्षित् को दे, हिमालय गलने गये, और राजा परीक्षित् सब देश जीत धर्म्मराज करने लगे। कितने एक दिन पीछे राजा परीक्षित् आखेट को गये तो वहाँ देखा कि एक गाय और एक बैल दौड़े चले आते हैं; तिनके पीछे मूसल हाथ में लिये एक शूद्र मारता आता है। जब वे पास पहुँचे तब राजा ने शूद्र को बुलाय, दुख पाय, झुँझलाय कर, कहा, "अरे ! तू कौन है अपना बखान कर, जो मारता है गाय और बैल को जान कर, क्या अर्जुन को तैंने दूर गया जाना, जिससे उसका धनुष नहीं पहिचाना; सुन, पाण्डु के कुल में ऐसा किसी को न पावेगा कि जिसके सोहीं कोई दीन को सतावेगा"। इतना कह राजा ने खड्ग हाथ में लिया। यह देख शूद्र डर कर खड़ा हुआ। फिर नरपति ने गाय और बैल को भी निकट बुला के पूछा, तुम कौन हो मुझे बुझा कर कहो; देवता हो कि ब्राह्मण और किस लिये भागे जाते हो यह निधड़क कहो। मेरे रहते किसी की इतनी सामर्थ्य नहीं जो तुम्हें दुःख दे"। इतनी बात सुनी तब तो बैल सिर झुकाकर बोला, "महाराज ! यह पापरूप काले बरन डरावनी सूरत जो आप के सन्मुख खड़ा है सो कलियुग है, इसी के आने से मैं भागा जाता हूँ; यह गाय-स्वरूप पृथिवी है सो

भी इसी के डर से भाग चली है। मेरा नाम धर्म्म है, चार पाँव रखता हूँ;—तप, सत्य, दया और शौच। सतयुग में मेरे चरण बीस बिस्वे थे, त्रेता में सोलह, द्वापर में बारह, अब कलियुग में चार बिस्वे रह गये। इसलिए कलि के बीच चल नहीं सकता। धरती बोली, "धर्म्मावतार! मुझसे भी इस युग में रहा नहीं जाता क्योंकि शूद्र राजा हो अधिक अधर्म्म मेरे ऊपर करेंगे, तिनका बोझ मैं न सह सकूँगी। इस भय से मैं भी भागती हूँ"। यह सुनते ही राजा ने क्रोध कर कलियुग से कहा, "मैं तुझे अभी मारता हूँ"। वह घबरा कर राजा के चरणों पर गिर गिड़गिड़ा कर कहने लगा, "पृथिवीनाथ! अब तो मैं आपकी शरण आया. मुझे कहीं रहने का ठौर बताइये, क्योंकि तीन काल और चारों युग जो ब्रह्मा ने बनाये हैं सो किसी भाँति मेटे न मिटेंगे"। इतना वचन सुनते ही राजा परीक्षित् ने कलियुग से कहा कि "तुम इतने ठौर में रहो—जुये, झूठ, मद की हाट, वेश्या के घर, हत्या, चोरी और सोने में"। यह सुन कलि ने तो अपने स्थान को प्रस्थान किया और राजा ने धर्म्म को मन में रख लिया। पृथिवी अपने रूप में मिल गई। राजा फिर नगर में आये और धर्म्मराज करने लगे।

कितने एक दिन बीते राजा फिर एक समय आखेट को गये और चलते चलते प्यासे भये। सिर के मुकुट में तो कलियुग रहता ही था, जिसने अपना अवसर पा राजा को अज्ञान किया। राजा प्यास के मारे वहाँ आते हैं जहाँ कि लोमस ऋषि आसन मारे नैन मूँदें, हरि का ध्यान लगाये तप कर रहे थे। उन्हें

देख परीक्षित् मन में कहने लगा कि यह अपने तप के घमंड से मुझे देख आँख मूँद रहा है। ऐसी कुमति ठान एक मरा साँप वहाँ पड़ा था सो धनुष से उठा ऋषि के गले में डाल अपने घर आया। मुकुट उतारते ही राजा को ज्ञान हुआ तो सोच कर कहने लगा कि कंचन में कलियुग का वास है यह मेरे सीस पर था इसी से मेरी ऐसी कुमति हुई जो मरा सर्प ले ऋषि के गले में डाल दिया, सो मैं अब समझा कि कलियुग ने मुझसे अपना पलटा लिया। इस महापाप से मैं कैसे छूटूँगा? बरन धन, जन, स्त्री और राज, मेरा क्यों न गया सब आज, न जानूँ किस जन्म में वह अधर्म्म जायगा जो मैंने ब्राह्मण को सताया है।

राजा परीक्षित् तो यहाँ इस अथाह शोकसागर में बूड़ रहे थे और जहाँ लोमस ऋषि थे तहाँ कितने एक लड़के खेलते हुए जा निकले। मरा साँप उनके गले में देख अचम्भे में हो घबरा कर आपस में कहने लगे कि भाई! कोई उनके पुत्र से जाकर कह दे जो उपवन में कौशिकी नदी के तीर ऋषियों के बालकों में खेलता है। एक सुनते ही दौड़ा दौड़ा वहाँ गया जहाँ शृंगी ऋषि बालकों के साथ खेलता था। कहा, बन्धु! तुम यहाँ क्या खेलते हो, कोई दुष्ट मरा काला नाग तुम्हारे पिता के कंठ में डाल गया है। सुनते ही शृंगी ऋषि के नयन लाल हो आये। दाँत पीस थरथर काँपने और क्रोध कर कहने लगा कि कलियुग में राजा उपजे हैं अभिमानी, धन के मद से अंधे हो गये हैं दुखदानी। अब मैं उसको दूँहूँ शाप, वही मीच पावेगा आप। ऐसे कह शृंगी

ऋषि ने कौशिकी नदी का जल चुल्लू में ले राजा परीक्षित् को शाप दिया कि तक्षक सर्प सातवें दिन तुझे डसेगा। इस भाँति राजा को शाप दे अपने बाप के पास आ गले से साँप निकाल कहने लगा कि हे पिता! तुम अपनी देह सँभालो, मैंने उसे शाप दिया है जिसने आप के गले में मरा सर्प डाला था। यह वचन सुनते ही लोमस ऋषि ने चैतन्य हो नयन उघार अपने ज्ञान ध्यान से विचार कर कहा—अरे पुत्र! तू ने यह क्या किया, क्यों शाप राजा को दिया? तिसके राज में सब सुखी थे. कोई दुखी न था, ऐसा धर्मराज था कि जिसमें सिंह गाय एक साथ रहते और आपस में कुछ न कहते। अरे पुत्र! जिनके देश में हम बसे क्या हुआ तिनके हाथ से मरा हुआ सर्प डाला गया था; उसे शाप क्यों दिया? तनक दोष पर तैंने दिया ऐसा शाप, किया बड़ा ही पाप, कुछ विचार मन में नहीं किया, गुण छोड़ अवगुण ही लिया। साधु को चाहिये शील सुभाव से रहे, आप कुछ न कहे और की सुन ले, सबका गुण ले ले, अवगुण तज दे।

इतना कह लोमस ऋषि ने एक चेले को बुला के कहा, तुम राजा परीक्षित् के पास जाके जता दो कि तुम्हें शृंगी ऋषि ने शाप दिया है। भला लोग तो दोष देहींगे पर वह सुन सावधान तो होय। इतना वचन गुरु का मान चेला चला चला वहाँ आया जहाँ राजा बैठा सोच करता था। आते ही कहा महाराज तुम्हें शृंगी ऋषि ने यह शाप दिया है कि सातवें दिन तक्षक डसेगा। अब तुम अपना काज करो जिससे कर्म की फाँसी से छूटो। सुनते ही राजा प्रसन्नतापूर्वक खड़ा हो हाथ जोड़ कहने लगा

कि मुझ पर ऋषि ने बड़ी कृपा की जो शाप दिया, क्योंकि मैं माया मोह के अपार शोकसागर में पड़ा था सो निकाल बाहर किया। जब मुनि का शिष्य विदा हुआ तब राजा ने आप तो वैराग्य लिया और जनमेजय को बुलाय राजपाट देकर कहा कि बेटा! गौ ब्राह्मण की रक्षा कीजो और प्रजा को सुख दीजो। इतनी कह आये रनवास, देखीं रानी सबै उदास। राजा को देखते ही रानियाँ पाओं पर गिर रो रो कहने लगीं, महाराज! तुम्हारा वियोग हम अबला न सह सकेंगी इससे तुम्हारे साथ जी दें तो भला। राजा बोले सुनो स्त्री को उचित है कि जिससें अपने पति का धर्म रहे सो करे, उत्तम काज में बाधा न डाले।

इतना कह धन जन कुटुम्ब और राज की माया तज निरमोही हो अपना योग साधने को गंगा के तीर पर जा बैठा। इसको जिसने सुना वह हाय हाय कर पछिताय पछिताय बिन रोये न रहा और यह समाचार जब मुनियों ने सुना कि राजा परीक्षित् शृंगी ऋषि के शाप से मरने को गंगा तीर पर आ बैठा है, तब व्यास, वसिष्ठ, भरद्वाज, कात्यायन, पराशर, नारद, विश्वामित्र, वामदेव, यमदग्नि आदि अट्ठासी सहस्र ऋषि आये और आसन बिछाय बिछाय पाँत पाँत बैठ गये और अपने अपने शास्त्र विचार विचार अनेक अनेक भाँति के धर्म राजा को सुनाने लगे।

पाठ ३२

गिरधर की कुंडलियाँ

अपावन = नापाक
बलधारी = बलवान
सहस (सहस्र) = हज़ार
पुरबुले = पहले जन्म के
कंत = पति
सुरलोक = वैकुंठ
सिधारेउ = गये
परिहरेउ = छोड़ दिये
सरवस (सर्वस्व) = सब कुछ
वदन = मुँह
अकथ = जो कहा न जा सके
वचन न दीन्हों जान = प्रतिज्ञा नहीं छोड़ी
बेग़रज़ी = निष्प्रयोजन, बेमतलब

नारी अतिबल होत है अपने कुल को नाश।
कौरव पांडव वंश को कियो द्रौपदी नाश॥
कियो द्रौपदी नाश केकई दशरथ मारेउ।
राम लखन से पुत्र तेउ बनवास सिधारेउ॥
कह गिरिधर कविराय सदा नर रहै दुखारी।
सो घर सत्यानाश जहाँ है अतिबल नारी॥ १॥

दौलत पाय न कीजिये सपने में अभिमान।
चंचल जल दिन चारि को ठाउँ न रहत निदान॥
ठाउँ न रहत निदान जियत जग में यश लीजै।
मीठे वचन सुनाय विनय सबही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि रहत सबही के दौलत॥ २॥

गुन के गाहक सहस नर बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला शब्द सुनै सब कोय॥

शब्द सुनै सब कोय कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को इक रंग काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय सहस नर गाहक गुन के॥ ३॥

साईं अवसर के पड़े को न सहै दुख द्वंद।
जाय बिकाने डोम घर वै राजा हरिचन्द॥
वै राजा हरिचन्द करैं मरघट-रखवारी।
धरे तपस्वी भेष फिरे अर्जुन बलधारी॥
कह गिरिधर कविराय तपै वह भीम रसोईं।
को न करे घटि काम परे अवसर के सोईं॥ ४॥

रही न रानी केकई अमर भई यह बात।
कवन पुरवुले पाप ते बन पठयो जग-तात।
बन पठयो जग-तात कंत सुरलोक सिधारेउ।
जेहि सुत काजे मरेउ राउ नहिं वदन निहारेउ॥
कह गिरिधर कविराय भई यह अकथ कहानी।
यश अपयश रहि गयउ रही नहिं केकइ रानी॥ ५॥

पुत्र प्रान ते अधिक है चारिउ युग परमान।
सो दशरथ नृप परिहरेउ वचन न दीन्हों जान॥
वचन न दीन्हों जान बड़ेन की बूझि बड़ाई।
बात रहै सो काज और बरु सरबस जाई॥
कह गिरिधर कविराय भये नृप दशरथ ऐसे।
पुत्र प्रान परिहरे वचन परिहरे न ऐसे॥ ६॥

साईं सब संसार में मतलब का ब्यौहार।
जब लगि पैसा गाँठ में तब लगि ताको यार॥
तब लगि ताको यार यार सँग ही सँग डोलै।
पैसा रहा न पास यार मुख से नहिं बोलै॥
कह गिरिधर कविराय जगत को याही लेखा।
करत बेगरजी प्रीति यार हम बिरला देखा॥ ७॥

झूठा मीठे वचन कहि ऋण उधार लै जाय।
लेत परम सुख ऊपजै लैके दियो न जाय।
लैके दियो न जाय ऊँच अरु नीच बतावै।
ऋण उधार की रीति माँगते मारन धावै॥
कह गिरिधर कविराय रहै जनि मन में रूठा।
बहुत दिना ह्वै जाय कहै तेरो कागद झूठा॥ ८॥

पाठ ३३

गिरधर की कुंडलियाँ

अनमान = अनुमान
पौरि = ड्यौढ़ी
मन खोलि = साफ़ दिल से
अंक भरि = गलबहियाँ डाल के
विरुझिये = बैर करिये
वनिता = स्त्री
पौरिया = दरवान
तरह देना = सह जाना
अपंग = अंगहीन (बेबस)

बतराय = बातचीत करके
खान पान = खाना पीना
राग रङ्ग = गाना बजाना
खटकत = खटकता है, चुभता है
मन हर लेना = वश में कर लेना
ताते होय = गर्म होय, क्रोध करे
सीरे ह्वै रहिये = ठंडे रहिये, (क्रोध न करिये)
त्रास देना = कष्ट देना, सताना

लंकेश = लंका का राजा (रावण)
प्रचंड = बहुत जोर से
अदंड = वेग से
ताउर आना = मूर्छा आना
करियां = पतवार
विपदा = विपत्ति
नाउर = नाव

साईं समौ न चूकिये यथाशक्ति उनमान।
को जानै कब आइहै तेरी पौरि प्रमान॥
तेरी पौरि प्रमान समौ असमौ तकि आवै।
ताको तू मन खोलि अंक भरि कंठ लगावै॥
कह गिरिधर कविराय सबै यामें सधि आई।
शीतल जल फल फूल समौ जिन चूको साईं॥ ९॥

साईं ये न विरुद्धिए गुरु पंडित कवि यार।
बेटा वनिता पौरिया यज्ञ-करावन-हार॥
यज्ञ-करावन-हार राजमंत्री जो होई।
विप्र परोसी वैद आप को तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सों तरह दिये वनि आवै साईं। १०॥

जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजे संग।
जो संग राखे ही बनै तौ करि राखु अपंग॥
तौ करि राखु अपंग फेरि फरकै सु न कीजै।
कपट रूप बतराय ताहि को मन हरि लीजै॥
कह गिरिधर कविराय खुटक जैहै नहिं ताकी।
कोटि दिलासा देउ लई धन धरती जाकी॥ ११॥

कह गिरिधर कविराय नाथ हौ तुमहिं खेवैया।
उठहि दया को डाँड़ घाट पर आवै नैया ॥ १५ ॥
उरझी नाव कुठौर में परी भँवर बिच आय।
दीनबन्धु अब तोहिं बिन को करि सकै सहाय ॥
को करि सकै सहाय वहै करिया बिन नाउर।
आँधी उठी प्रचण्ड देखि अति आयो ताउर ॥
कह गिरिधर कविराय नाथ बिन कब केहि सुरझी।
ताते हा हा करों मोरि विपदा में उरझी ॥ १६ ॥

पाठ ३४

वृन्द कवि के दोहे

सहायक = सहायता करनेवाला
सबल = बलवान्, बली
निबल(निर्बल) = बलहीन, कमज़ोर
जगावत = भड़काना
दीप (दीपक) = दिया
बसाय = वश चलना
अचल = जो न चले (पहाड़)
तरु = पेड़
झकोर = झोका
बान = टेव, स्वभाव
तीखे = पैने
भौंर = भौंरा
कंटक = कांटे

वैर करना = बिगाड़ करना
स्वारथ (स्वार्थ) = अपना काम
वैन = बात
पुचकारना = प्यार करना
धैन (धेनु) = गाय
पर = पराया, दूसरा
दृष्टि होना = देख पड़ना
कुटिल = टेढ़ा
सरल = सीधा
गति = चाल
बांबी = सांप का बिल
यतन (यत्न) = उपाय
आस = सहारा, आसरा (आश्रय)

घन = बादल
उदधि = समुद्र
तोय = पानी, जल
मोद = आनन्द, खुशी
उनयो = उमड़ा हुआ
पयोद = पय अर्थात् पानी देने वाला (बादल)
प्रकृति = टेव, स्वभाव
सनेह = चिकनाई, तेल
पिशुन = छली
सुजन = अच्छा आदमी
बिसास (विश्वास) = प्रतीति
दाध्यो (दग्ध) = जला हुआ
निवरे = चुके
रीतें = खाली होय
नीर = पानी
बिनसत = नाश होते, मिटते
धनवंत = धनी, मालदार
धनहीन = निर्धन, कंगाल
नग्न = नंगो, वस्त्रहीन
सरोवर = ताल
अकाज = काम का बिगाड़
पिक = पपीहा
रुधिर = लोहू
पय = दूध
पयोधर = जो दूध धारण करे (चूची)
मरम (मर्म) = छिपी बात, भेद
मतिधीर = दृढ़-बुद्धि वाला
प्रसूत = लड़का होने की
पायंदाज़ = जिस पर पाँव पड़े, पाँव-पोंछन।

सबै सहायक सबल के, कोई न निबल सहाय।
पवन जगावत आगि को, दीपहि देत बुझाय॥ १॥

कछु बसाय नहिँ सबल सों, करै निबल सों जोर।
चलै न अचल उखारि तरु, डारत पवन झकोर॥ २॥

नृप-प्रताप ते देश में, रहै दुष्ट नहिँ कोय।
प्रगटै तेज दिनेश को, तहां तिमिर नहिँ होय॥३॥

डरै न काहू दुष्ट सों, जाहि प्रेम की बान।
भौंर न छोड़ै केतकी, तीखे कण्टक जान॥ ४॥

बिन स्वारथ कैसे सहै, कोऊ करुए बैन।
लात खाय पुचकारियें, होय दुधारू धैन॥ ५॥

पर को औगुन देखियें, अपनो दृष्टि न होय।
करै उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो होय॥ ६॥

ठौर देखि के हूजिये, कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ो फिरत है, बाँबी सूधो साँप॥ ७॥

ताही को करिये यतन, रहिये जाकी आर।
कौन बैठि कै डार पर, काटै सोई डार॥ ८॥

उत्तम जन सों मिलत ही, अवगुन हूँ गुन होय।
घनसँग खारो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय॥ ९॥

उद्यम कबहुँ न छाँड़िये, पर-आशा के मोद।
गागर कैसे फोरिये, उनयो देखि पयोद॥ १०॥

कहा करै कोऊ यतन, प्रकृति न बदले कोय।
साने सदा सनेह में, जीभ न चिकनी होय॥ ११॥

पिशुन छल्यो नर सुजन सों, करत विसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवति छाछहि फूँकि॥ १२॥

फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै व्यौपार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी बार॥ १३॥

कन कन जोरे मन जुरे, खाते निबरै सोय।
बूँद बूँद सों घट भरै, टपकत रीतै तोय॥ १४॥

श्रमही सों सब मिलत है, बिन श्रम मिले न काहि।
सीधी अँगुरी घी जम्यो, क्यों हूँ निकसत नहिं॥ १५॥

सुख दिखाइ दुख दीजिये, खल से लरिये काहि।
जो गुड़ दीन्हें ही मरत, क्यों विष दीजै ताहि॥ १६॥

अनपूँछे ही जानिये, मूढ़ देख मन माँहिं।
छलकें ओछे नीर घट, पूरे छलकें नाहिं ॥ १७ ॥
विनसत वार न लागही, ओछे जन की प्रीति।
अंवर डंवर साँझ के, बारू की सी भीति ॥ १८ ॥
जो धनवन्त सो देय कछु, देय कहा धन-हीन।
कहा निचोरे नग्न जन, न्हान सरोवर कौन ॥ १९ ॥
आप अकारज आपनो, करत कुसंगति साथ।
पाँय कुल्हाड़ा देत हैं, मूरख अपने हाथ ॥ २० ॥
भले बुरे सव एकसे, जौ लौं बोलत नाहिँ।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु वसंत के माहिँ ॥ २१ ॥
दोषहि को उमहै गहै, गुन न गहै खल लोक।
पियै रुधिर पय ना पियै, लगी पयोधर जोंक ॥ २२ ॥
पंडित जन को श्रम मरम, जानति जे मति धीर।
कवहूँ वांझ न जानही, तन प्रसूत की पीर ॥ २३ ॥
जाही से कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे बुझत पियास ॥ २४ ॥
छोटे नर ते रहत है, शोभायुत सिरताज।
निर्मल राखै चाँदनी, जैसे पायंदाज ॥ २५ ॥

पर को औगुन देखियं, अपनो दृष्टि न होय।
करै उजेरो दीप पै, तरे अँधेरो होय॥ ६॥
ठौर देखि के हूजिये, कुटिल सरल गति आप।
बाहर टेढ़ो फिरत है, वाँबी सूधो साँप॥ ७॥
ताही को करिये यतन, रहिये जाकी आर।
कौन वैठि कै डार पर, काटैं सोई डार॥ ८॥
उत्तम जन सों मिलत ही, अवगुन हूँ गुन होय।
घनसँग खारो उदधि मिलि, वरसै मीठो तोय॥ ९॥
उद्यम कवहुँ न छाँड़िये, पर-आशा के मोद।
गागर कैसे फोरिये, उनयो देखि पयोद॥ १०॥
कहा करै कोऊ यतन, प्रकृति न बदले कोय।
खाने सदा सनेह में, जीभ न चिकनी होय॥ ११॥
पिशुन छल्यो नर सुजन सों, करत विसास न चूकि।
जैसे दाध्यो दूध को, पीवति छाछहि फूँकि॥ १२॥
फेर न ह्वै है कपट सों, जो कीजै व्यौपार।
जैसे हाँडी काठ की, चढ़ै न दूजी वार॥ १३॥
कन कन जोरे मन जुरे, खाते निवरै सोय।
बूँद बूँद सों घट भरै, टपकत रीतै तोय॥ १४॥
श्रमही सों सब मिलत है, विन श्रम मिले न काहि।
सीधी अँगुरी घी जम्यो, क्यों हूँ निकसत नहिं॥ १५॥
सुख दिखाइ दुख दीजिये, खल से लरिये काहि।
जो गुड़ दीन्हें ही मरत, क्यों विप दीजै ताहि॥ १६॥

अनपूँछे ही जानिये, मूढ़ देख मन माँहिं।
छलकें ओछे नीर घट, पूरे छलकें नाहिं॥ १७॥

विनसत वार न लागही, ओछे जन की प्रीति।
अंवर डंवर साँझ के, बारू की सी भीति॥ १८॥

जो धनवन्त सो देय कछु, देय कहा धन-हीन।
कहा निचोरे नग्न जन, न्हान सरोवर कीन॥ १६॥

आप अकारज आपनो, करत कुसंगति साथ।
पाँय कुल्हाड़ा देत हैं, मूरख अपने हाथ॥ २०॥

भले वुरे सब एकसे, जौ लौं बोलत नाहिँ।
जान परत हैं काक पिक, ऋतु वसंत के माहिँ॥ २१॥

दोपहि को हमहै गहै, गुन न गहै खल लोक।
पियै रुधिर पय ना पियै, लगी पयोधर जोंक॥ २२॥

पंडित जन को श्रम मरम, जानति जे मति धीर।
कबहूँ बांझ न जानही, तन प्रसूत की पीर॥ २३॥

जाही से कछु पाइये, करिये ताकी आस।
रीते सरवर पर गये, कैसे वुझत पियास॥ २४॥

छोटे नर ते रहत है, शोभायुत सिरताज।
निर्मल राखै चाँदनी, जैसे पायंदाज॥ २५॥

पाठ ३५

वृन्द कवि के दोहे

अरि = वैरी
तृन (तृण) = तिनका
समूह = ढेर
छिनक = क्षण में, तनिक देर में
पलास = ढाक
पारखी = परखनेवाला
भाषना = कहना
सीख = शिक्षा, उपदेश
जिय राखना = याद रखना
अपावन = मैला
कंचन = सोना
अनरस करै = बिगाड़ करे
याचना = माँगना
करतार = करने वाला, बनाने वाला (ईश्वर)
रवि = सूर्य
व्यर्थ = बेकाम, निष्प्रयोजन
कारज (कार्य) करे = काम पूरा होय
यतन (यत्न) = उपाय

फलदायक = फल देनेवाला
जड़मति = मोटी बुद्धि वाला (मूर्ख)
सुजान = अच्छी तरह जानने वाला (जानकार)
गुण = हुनर, रस्सी
गुणवारो = गुणी
गुनयुत = रस्सी समेत
संपति = धन, दौलत
लहना = पाना
सुसंगति = अच्छा साथ
कुसंग = बुरा साथ
जोति (ज्योति) = तेज, प्रकाश
थान (स्थान) = ठौर, जगह
सज्जन = अच्छा आदमी
दुर्जन = बुरा आदमी
पाहन = पत्थर
सूर = सूर्य
मधु = शहद
मक्षिका = मक्खी

अरि छोटो गनिये नहीं, जासो होत विगार।
तृन-समूह को छिनक में, जारत तनक अँगार ॥१॥
जाहि बड़ाई चाहिये, तजै न उत्तम साथ।
ज्यों पलास सँग पान के, पहुँचे राजा हाथ ॥२॥

वचन पारखो होहु तुम, पहिले आप न भाख।
अनपूछे कहिये नहीं, यही सीख जिय राख ॥३॥

कछु कहि नीच न छेड़िये, भलो न वाको संग।
पाथर डारे कीच में, उछरि बिगारै अंग ॥४॥

उत्तम विद्या लीजिये, यदपि नीच पै होय।
परो अपावन ठौर में, कञ्चन तजत न कोय ॥५॥

जो तू चाहे अधिक रस, सीख ईख से लेय।
जो तोसों अनरस करै, ताहि अधिक रस देय ॥६॥

सबसे लघु है माँगिवो, या में फेर न सार।
बलि पै याचत ही भये, बावन तन करतार ॥७॥

पर-घर कबहुँ न जाइये, गये घटत है जोत।
रवि-मंडल में जात शशि, छीन कला छवि होत ॥८॥

फल विचारि कारज करो, करो न व्यर्थ अमेल।
तिल ज्यों वारू पेरिये, नाहीं निकसै तेल ॥९॥

कारज ताही को सरै, करै जो समय विचार।
कबहुँ न हारे खेल जो, खेलै दाँव विचार ॥१०॥

जो पहिले कीजै यतन, सो पाछे फल दाय।
आग लगे खोदे कुआँ, कैसे आग बुझाय ॥११॥

ताको अरि कह करि सकै, याको यतन उपाय।
जरै न तातो रेत में, जाके पनही पाय ॥१२॥

जो कहिये सो कीजिये, पहिले कर निरधार।
पानी पी घर पूछनो, नाहिं न भलो विचार ॥१३॥

काम परे ही जानिये, जो नर जैसो होय।
विन ताये खोटो खरो, गहनो लखै न कोय ॥१४॥

करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते, सिल पर होत निसान ॥१५॥

मूढ़ तहाँ ही मानिये, जहाँ न पण्डित होय।
दीपक को रवि के उदय, बात न बूझे कोय ॥१६॥

गुनवारो सम्पति लहै, लहै न गुण विन कोय।
काढ़ै नीर पताल सों, जो गुणयुत घट होय ॥१७॥

होत कुसंगति सहज सुख, दुख कुसंग के थान।
गन्धी और लोहार की, देखो बैठि दुकान ॥१८॥

सज्जन को दुख हू दिये, दुर्जन पूरे आस।
जैसे चन्दन को घिसे, सुन्दर देत सुवास ॥१९॥

सज्जन चित कबहुँ न धरत, दुर्जन जन के बोल।
पाहन मारै आम को, तउ फल देत अमोल ॥२०॥

मधुर वचन ते जात मिट, उत्तम जन अभिमान।
तनक शीत जल सों मिटै, जैसे दूध उफान ॥२१॥

सुख सज्जन के मिलन को, दुर्जन मिले जनाय।
जाने ऊख मिठास को, जो मुख नीम चवाय ॥२२॥

अंतर अँगुरी चार को, साँच झूठ में होय।
सब मानै देखी कही, सुनी न मानै कोय ॥२३॥

जाहि मिले सुख होत है, तेहि विछुरे दुख होय।
सूर उदय फूले कमल, ता विन सकुचै सोय ॥२४॥

खाय न खरचै सूम धन , चोर सबै लै जाय।
पीछे ज्यों मधु-मक्खिका , हाथ मलै पछताय ॥२५॥

पाठ ३६

* रहीम के दोहे

प्रकृति = स्वभाव
व्यापत (व्याप्त) = फैलता है
भुजंग = साँप
मुए = मर गए
प्रतिपालत हैं = पालता है
लखे = देखे
याचकता = भीख
गात (गात्र) = शरीर, देह
गाँस = लोहा जो तीर के नोक पर लगाया जाता है
नाद = शब्द, आवाज़
रीझना = खुश होना
बारे = लड़कपन, जलाने पर
बढ़े = बड़ा होने पर, ठण्डा होने पर
कूप = कुआँ
नारायन (नारायण) = ईश्वर
वित्त = धन दौलत
छोह = प्रीति, प्यार
थल (स्थल) = जगह
बिहाय गई = बीत गई
माया = छल कपट
ममता = मेरापन, अहंकार, घमण्ड
मोह = स्नेह, प्यार
व्याल बदन = साँप के मुँह में

---

* अकबर बादशाह के मन्त्री बैरमख़ाँ ख़ानख़ाना के पुत्र अब्दुररहीमख़ाँ ख़ानख़ाना थे। यह तुलसीदास के परम मित्र थे। ये महाशय अरबी, फ़ारसी, तुर्की, संस्कृत और व्रजभाषा के बड़े पण्डित थे। इनकी सभा रातदिन विद्वज्जनों से भरी रहती थी। ख़ानख़ाना ने ७२ बरस की अवस्था में सन् १०३६ हिजरी में इस असार संसार को छोड़ा।

जो "रहीम" उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसंग ।
चन्दन विष व्यापत नहीं, लपटे रहत भुजंग ॥१॥

"रहिमन" वे नर मर चुके, जे कहुँ माँगन जाहिं ।
उनते पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहिं ॥२॥

अमरवेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि ।
"रहिमन" ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरिये काहि ॥३॥

दीनहि सब कहँ लखत है, दीन लखे नहिं कोय ।
जो "रहीम" दीनहिं लखत, दीनबन्धु सम सोय ॥४॥

"रहिमन" याचकता गहे, बड़े छोट ह्वै जात ।
नारायन हूँ को भयो, बावन आँगुर गात ॥५॥

अमृत ऐसे वचन में, "रहिमन" रिस की गाँस ।
जैसे मिसिरिहु में मिली, निरस बाँस की फाँस ॥६॥

कहि "रहीम" संपति सगे, बनत बहुत बहु रीति ।
विपति कसौटी जे कसे, तेई साँचे मीत ॥७॥

नाद रीझ तन देत मृग, नर धन हेत समेत ।
ते "रहीम" पशु ते अधिक, रीझेहु कछू न देत ॥८॥

ज्यों "रहीम" गति दीप की, कुल कुपूत गति सोय ।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अँधेरो होय ॥९॥

"रहिमन" अँसुआ नयन ढरि, जिय दुख प्रगट करेय ।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देय ॥१०॥

"रहिमन" मनहिं लगाय के, देखि लेहु किन कोय
नर को बस करबो कहा, नारायन बस होय ॥११॥

प्रीतम छवि नयनन बसी, पर छवि कहाँ समाय।
भरी सराय "रहीम" लखि, आप पथिक फिर जाय ॥१२॥

दुरदिन पड़े "रहीम" कहि, भूलत सब पहिचान।
सोच नहीं वित-हानि को, जो न होय हित-हानि ॥१३॥

रीति प्रीति सब सों भली, वैर न हित मित गोत।
"रहिमन" याही जनम को, बहुरि न संगति होत ॥४॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
"रहिमन" मछरी नीर को, तऊ न छाड़त छोह ॥ १५ ॥

"रहिमन" चुप ह्वै बैठिये, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आय हैं, बनत न लगिहै बेर ॥ १६ ॥

दुरदिन पड़े "रहीम" कहि, दुर थल जैयत भागि।
ठाढ़े हूजत घूर पर, जब घर लागति आगि ॥ १७ ॥

"रहिमन" नाहिं सराहिये, लेन देन की प्रीति।
प्रानन बाजी लाग ही, हारि होय कै जीत ॥ १८ ॥

कहु "रहीम" केतिक रही, केतिक गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अंत चले पछिताय ॥ १९ ॥

मुक्ता करै कपूर करि, चातक जीवन जोय।
येतो बड़ो "रहीम" जल, व्यालवदन विष होय ॥२० ॥

पाठ ३७

रहीम के दोहे

जलधि = समुद्र
धीम (धीमा) = शांत, सुस्त
प्रभुता = बड़प्पन, महिमा
भरम = यश, नामवरी
शशि = चन्द्रमा
दिवस = दिन
अाकास (आकाश) = आसमान
पंक = कीच
उदधि = समुद्र
कलङ्क = दोष
मद = नशे की चीज़ (शराब)
बिथा (व्यथा) = दुख, पीड़ा
अठिलैहैं = ठट्ठा करेंगे
गोय (गोप्य) = छिपाना
लाख करो = कितना ही उपाय करो
बिलगाना = अलग हो जाना
मही = छाछ, मट्ठा
मीत (मित्र) = दोस्त
भीर परे = दुख दर्द में

अती (अति) = ज़ियादती करना
कानि = मर्यादा
बिधु = चन्द्रमा
उगे = उदय हुए
तरैयाँ = तारे
निज कर = अपने हाथ
भावी = बदा हुआ, होनहार
सरिता = नदी
खनावत = खोदते हैं
पुरुषारथ (पुरुषार्थ) = पराक्रम, साहस, वीरता
पेट लागि = पेट भरने के लिये
मुरलीधर = वंशी धारण करनेवाला
गिरधर = पहाड़ धारण करनेवाला
उर = हृदय
काया = शरीर
रुचै = सुहाता है
दृग = नेत्र, आंख
रीझना = खुश होना

कौन बड़ाई जलधि मिलि, गङ्ग नाम भयो धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये "रहीम" ॥ १ ॥

संपति भरम गँवाय के, हाथ रहत कछु नाहिँ।
ज्यों "रहीम" शशि रहत है, दिवस अकासहिं माहिँ ॥ २ ॥

धनि "रहीम" जलपंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥ ३॥

"रहिमन" नीचन संग बसि, लगत कलंक न काहि।
दूध कलारिन हाथ लखि, मद समुझहिं सब ताहि॥४॥

"रहिमन" निजमन की विथा, मन ही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहैं लोग सब, बाँटि न लैहैं कोय॥ ५॥

बिगरी बात बनै नहीं, लाख करौ किन कोय।
"रहिमन" बिगरे दूध को, मथे न माखन होय॥ ६॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही बिलगाय।
"रहिमन" सोई मीत है, भीर परे ठहराय॥ ७॥

जो "रहीम" होती कहूँ, प्रभु गति अपने हाथ।
तौ कोधौं केहि मानतो, आप बड़ाई साथ॥ ८॥

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चले जल पारते, जो "रहीम" बढ़ि जाय॥९॥

"रहिमन" अती न कीजिए, गहि रहिये निज कानि।
सहिजन अति फूलै तऊ, डार पात की हानि॥ १०॥

समय पाय सब के वचन, ओछे सहो "रहीम"।
सभा दुशासन पट गह्यो, गदा लिये रहे भीम॥ ११॥

"रहिमन" राज सराहिए, जो विधु के विधि होय।
रवि को कहा सराहिए, उगे तरैयां खोय॥१२॥

निज कर क्रिया "रहीम" कहि, सुध भावी के हाथ।
पाँसा अपने हाथ में, दाँव न अपने हाथ॥१३॥

जैसी परे सो सहि रहै, कहि "रहीम" यह देह।
धरती ही पर परत सब, शीत घाम अरु मेह ॥१४॥

"रहिमन" हानि दरिद्र तर, तऊ आँचिबे योग।
ज्यों सरितन सूखा परै, कुआँ खनावत लोग ॥१५॥

"रहिमन"देखि बड़ेन को, लघु न दीजिए डारि।
जहाँ काम आवे सुई, कहा करै तरवारि ॥१६॥

जो पुरुषारथ ते कहूँ, संपति मिलत "रहीम"।
पेट लागि वैराट गृह, तपत रसोई भीम ॥१७॥

ओछे काम बड़े करें, तौ न बड़ाई होय।
ज्यों "रहीम" हनुमन्त को, गिरधर कहै न कोय ॥१८॥

जो बड़ेन को लघु कहौ, नहिँ "रहीम" घटि जाहिँ।
गिरधर मुरलीधर कहे, कछु दुख मानत नाहिँ ॥१९॥

बड़े दीन को दुख सुने, देत दया उर आनि।
हरि हाथी सों कब हती, कहु "रहीम" पहिचानि ॥२०॥

राम न जाते हरिन सँग, सीय न रावण साथ।
जो "रहीम" भावी कतहुँ, होति आपने हाथ ॥२१॥

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहुँ किन जाहिँ।
जल में जो छाया परी, काया भीजति नाहिँ ॥२२॥

तब ही लग जीवो भलो, दीबो परै न धीम।
बिन दीबो जीवो जगत, हमैं न रुचै "रहीम" ॥२३॥

"रहिमन" पानी राखिए, बिन पानी सब सून।
पानी गए न ऊबरै, मोती, मानुस, चून ॥२४॥

"रहिमन" रहिबो वा भलो, जौ लौं शील समूच ।
शील ढील जब देखिए, तुरत कीजिए कूच ॥२५॥

पाठ ३८

तुलसीदास जी के दोहे

सुजन = सज्जन, भला मानुस, साधु
सराहना = बड़ाई करना
कीरति (कीर्ति) = बड़ाई
मसि = कारिख, स्याही
भवितव्यता = होनहार
वशीकरण = वश में कर लेना
परिहर = छोड़ दे
सुग्रंव = सुन्दर ग्राम
पाहन = पत्थर
खान (खानि) = घर, जगह
स्वारथ (स्वार्थ) = अपना मतलब
नसाय = नाश हो जाय, मिटि जाय
उपदेश = शिक्षा
सिद्धांत = सिद्ध की हुई बात, फल
यथारथ (यथार्थ) = ठीक, सच्चा
बोध = ज्ञान
लखाय = जान पड़े
विरोध = झगड़ा
विटपि (विटपी) = वृक्ष
भुअंग (भुजंग) = साँप
मामिला = काम
काया = देह
मनसा = इच्छा, मन
लुनै = काटै
उदय अस्त लों = जहां से सूर्य निकलता और जहां डूबता है (सारी पृथ्वी)
कंचन बरसै मेह = सोना बरसै
अवलंब = सहारा
परमारथ (परमार्थ) = मोक्ष
बारिद = पानी देनेवाला (मेघ)
दाहिने = अनुकूल
भूपति = धरती का स्वामी (राजा)
निशिवासर = रात दिन
इताति मानो (अरबी शब्द) = भजन करे
मतो प्रवीन = चतुरों का मत है
छत्तीस = प्रतिकूल जैसे ३६ में ३ और ६ का झुकाव एक ओर नहीं है
छत्तीन = अनुकूल जैसे ६३ में ६ और ३ का एक ही ओर झुकाव है
उपचार = सेवा, उपाय
मराल = हंस

आपु आप कहँ सब भलो, अपने कहँ कोइ कोइ।
"तुलसी" सब कहँ जो भलो, सुजन सराहिय सोइ ॥१॥

"तुलसी" जे कीरति चहैं, पर-कीरति को खोइ।
तिनके मुँह मसि लागि है, मुए न मिटिहै धोइ ॥२॥

"तुलसी" जस भवितव्यता, तैसी मिलै सहाय।
आपु न आवै ताहि पै, ताहि तहाँ लै जाय ॥३॥

"तुलसी" मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुँ ओर।
वशीकरन एक मंत्र है, परिहरु वचन कठोर ॥४॥

"तुलसी" संत सुअंब तरु, फूलि फलहिं पर-हेत।
इत ते ये पाहन हने, उत ते वे फल देत ॥५॥

काम क्रोध मद लोभ की, जब लग मन में खान।
तब लग पंडित मूरखौ, तुलसी एक समान ॥६॥

स्वारथ सो जानहुँ सदा, जाते विपति नसाय।
"तुलसी" गुरु उपदेश बिनु, सो किमि जानो जाय ॥७॥

गुरु करिबो सिद्धांत यह, होय यथारथ बोध।
अनुचित उचित लखाय उर, "तुलसी" मिटै विरोध ॥८॥

नीच निचाई नहिं तजै, जो पावै सतसंग।
"तुलसी" चंदन विटपि बसि, विष नहिं तजत भुअंग ॥९॥

नीच चंग सम जानियो, सुनि लखि "तुलसीदास"।
ढील देत मुँइ गिर परत, खैंचत चढ़त अकास ॥१०॥

"तुलसी" तीन प्रकार ते, हित अनहित पहिचान।
परवस परे परोस बस, परे मामिला जान ॥११॥

"तुलसी" काया खेत है, मनसा भये किसान।
पाप पुण्य दोउ बीज हैं, बुवै सो लुनै निदान ॥१२॥

अर्व खर्व लों द्रव्य है, उदय अस्त लों राज।
जो "तुलसी" निज मरन है, तौ आवै केहि काज ॥१३॥

आवत ही हर्षे नहीं, नयनन नहीं सनेह।
"तुलसी" तहाँ न जाइये, कंचन बरसै मेह ॥१४॥

"तुलसी" जग में आइ के, कर लीजै दो काम।
देवे को टुकड़ा भलो, लेवे को हरि-नाम ॥१५॥

"तुलसी" कबहुँ न त्यागिये, अपने कुल की रीति।
लायक ही सों कीजिये, व्याह वैर अरु प्रीति ॥१६॥

राम-चरन अवलंब बिनु, परमारथ की आस।
चाहत वारिद-बुन्द गहि, "तुलसी" उड़न अकास ॥१७॥

लगन महूरत योग बल, "तुलसी" गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि ॥ १८ ॥

घर घर माँगत टूक पुनि, भूपति पूजै पाय।
ते "तुलसी" तब राम बिनु, ते अब राम सहाय ॥ १९ ॥

"तुलसी" दिन भल साहु कहँ, भली चोर कहँ राति।
निशि वासर ता कहँ भलो, माने राम इताति ॥ २० ॥

जग ते रहु छत्तीस है, राम चरन छत्तीन।
"तुलसी" देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रवीन ॥ २१ ॥

"तुलसी" राम-सनेह करु, त्यागु सकल उपचार।
जैसे घटत न अंक नौ, नौ के लिखत पहार ॥ २२ ॥

सबै कहावत राम के, सबहि, राम की आस।
राम कहे जेहि आपनो, तेहि भजु "तुलसीदास" ॥२३॥
घर कीन्हें घर जात है, घर छोड़े घर जाय।
"तुलसी" घन वन बीचही, राम प्रेम पुर छाय ॥ २४ ॥
बरु मराल मानस तजै, चन्द शीत रवि घाम।
मोह मदादिक जो तजै, "तुलसी" तजै न राम ॥२५॥

पाठ ३६

सीताजी का रामचन्द्रजी के साथ वन जाने की आज्ञा माँगना और रामचन्द्रजी का सीताजी को समझाना।

[रामायण से]

अकुलाय उठी = घबड़ा गई
वंदि = प्रणाम करके
नमितमुख = सिर नीचा किये हुए
रूपराशि = सुन्दरता का समूह (अति रूपवती)
अवनि = पृथिवी
चित्रलिखित कपि = बन्दर की तसवीर
किरातकिशोरी = किरात की लड़की
विरंचि = ब्रह्मा
विषय = भोग, विलास
कानन = वन
पुनीत = पवित्र, शुद्ध
जीवननाथ = प्राणनाथ (स्वामी, पति)
सुकृत = अच्छी करनी
मंजु = सुन्दर, मनोहर
विलोचन = आँख
मोचति = छोड़ती है, बहाती है
वारि (वारि) = पानी, आँसू
परिजन = घर के लोग, नौकर चाकर
भोग = सुख
आयसु = आज्ञा
विवेकमय = ज्ञान से भरे हुए
परितोष कीन्ह = तसल्ली दी
प्रबोधन लगे = समझाने लगे
विपिन = जङ्गल
सकुचाहीं = लजाते हैं

भामिनी = क्रोध करनेवाली (स्त्री)
भवन = घर
दूजा = दूसरा
सादर = आदर सहित
मतिभोरी = भोले स्वभाववाली
शपथ शत = सौ सौगन्द
सुमुखि = सुन्दर मुँहवाली
श्रुतिसंमत = वेद का मत
नरेश = मनुष्यों के स्वामी (राजा)
प्रमान (प्रमाण) करि = सच्ची कर
पितु बानी (वाणी) = पिता की आज्ञा
बामा = उलटा करनेवाली (स्त्री)
परिनाम (परिणाम) = अंत में
भयंकर = भय उपजाने वाला, डरावना

कंदरा = गुफा
अगाध = बहुत गहरा
वृक = भेड़िया
केहरि = सिंह
नाग = हाथी
नाद करहिं = बोलते हैं
धीरज भागा = धीरज छूट जाता है
शयन = सोना
बलकल (वल्कल) = बकला, छिलका
बसन = वस्त्र
असन = भोजन
रजनीचर, निशिचर = रात में घूमने वाले (राक्षस)
कोटिक = करोड़ों
ब्याल = साँप
विहंग = पक्षी.

घोर घाम = कड़ी धूप
हिमवारि = बर्फ़ का, अर्थात् ठंढा पानी
बयारि = हवा
कंटक = काँटे
मग = राह
नाना = बहुत
पयादेहि = पैदल, पाँव पाँव
पदत्रान (पदत्राण) = पाँव बचानेवाला (जूता)

निकर = समूह, झुंड
धीर = धीरजवाले
गहन = वन
मृगलोचनि = मृग के से नेत्रवाली
भीरुसुभाये = डरपोक स्वभाववाली
हंसगमनि = हंस की तरह धीरे धीरे चलनेवाली
अपयश = बदनामी
मानस सलिल = मानसरोवर का जल

मृदु = कोमल, मुलायम
मारग (मार्ग) = राह
अगम = जहाँ न जा सके
भूमिधर = पृथिवी के थामनेवाले (पहाड़)

सुधा = अमृत
लवन (लवण) पयोधि = खारी समुद्र
मराली = हंस की स्त्री

नव रसाल = नया आम उर = जी में
चन्द्रवदनी = चन्द्रमा के सदृश मुँहवाली अवरि (अवश्य) = निस्संदेह

दो०—समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाय।
जाय सासु-पद कमल युग, वन्दि बैठि सिर नाय॥

दीन्ह असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित-मुख सोचति सीता। रूप-राशि पति प्रेम पुनीता॥
चलन चहत वन जीवननाथा। कौन सुकृति सन होइहि साथा॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधिकरतव कछु जात न जाना॥
मञ्जु विलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात! सुनहु सिय अति सुकुमारी। सासु, ससुर परिजनहिं पियारी॥
पलँग पीठि तजि गोद हिँडोरा। सिय न दीन्ह पग अवनि कठोरा॥
सिय वन वसहि तात! केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डराती॥
वन हित कोल किरात किशोरी। रची विरञ्चि विषय सुख भोरी॥
कै तापस तिय कानन योगू। जिन तप हेत तजा सब भोगू॥
अस विचारि जस आयसु होई। मैं सिख देउँ जानकिहिँ सोई॥

दो०—कहि प्रिय वचन विवेकमय, कीन्ह मातु परितोष।
लगे प्रबोधन जानकिहिं, प्रगट विपिन गुण दोष॥

मातु समीप कहत सकुचाहीं। बोले समय समुझि मन माहीं॥
राजकुमारि सिखावन सुनहू। आन भाँति जिय जनि कछु गुनहू॥
आपन मोर नीक जो चहहू। वचन हमार मानि घर रहहू॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब विधि भामिनि! भवन भलाई॥
इहि तें अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सास ससुर पद पूजा॥
जब जब मातु करहिं सुधि मोरी। होइहि प्रेम विकल मति भोरी॥

तव तव तुम कहि कथा पुरानी । सुन्दरि समुझायहु मृदुवानी ॥
कहौं सुभाव सपथ सत मोहीं । सुमुख मातु हित राखौं तोंही ॥
दो०—गुरु श्रुति सम्मत धर्म्म-फल , पाइय विनहिं कलेस ।
हठ-वश सव संकट सहे , गालव* नहुष† नरेस ॥
मैं पुनि करि प्रमाण पितु-वानी । फिरव वेगि सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहिं लागहि वारा । सुन्दरि ! सिखवन सुनहु हमारा ॥
जो हठ करहु प्रेम-वश वामा । तौ तुम दुख पाउव परिनामा ॥
कानन कठिन भयङ्कर भारी । घोर घाम, हिम, वारि बयारी ॥
कुश कण्टक मग कङ्कर नाना । चलव पयादेहि विनु पदत्राना ॥
चरण कमल मृदु मंजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥

---

* गालव मुनि विश्वामित्र के शिष्य थे । जब गालव मुनि संपूर्ण विद्या पढ़ निश्चिन्त हुए तब अपने गुरु विश्वामित्र से इच्छानुसार गुरुदक्षिणा माँगने को कहा । विश्वामित्र ने गालव मुनि से श्रद्धानुसार दक्षिणा देने को कहा, परन्तु उन्होंने एक न माना और वार वार हठ करते रहे । तब विश्वामित्र ने क्रोध में आ आठ सौ श्यामकर्ण घोड़े माँगे । इन घोड़ों के ढूँढ़ने में गालव मुनि को बहुत दुःख भोगना पड़ा और बड़ी कठिनता से चार सौ घोड़े ला सके । गुरुजी कृपालु थे । इस कारण अपने शिष्य का अपराध क्षमा किया । रामचन्द्रजी सीता जी को समझाते हैं और कहते हैं कि हठ करना अच्छा नहीं है । देखो गालव मुनि ने हठ करके कितना दुख उठाया ।

† जब नहुष राजा ने तपस्या कर इन्द्रासन को पाया तब इन्द्राणी से विवाह करना चाहा । इन्द्राणी ने उनसे विवाह करना अंगीकार न किया और उनको बहुत समझाया परन्तु राजा ने एक न मानी । यह देख इन्द्राणी ने कहा कि यदि राजा सब ऋषियों को रथ में जोत मेरे भवन पर आवे तो मैं इसको अंगीकार करूँगी । राजा ने मद में आ ऐसा ही किया और अन्त में अगस्त्य ऋषि के शाप से साँप हो गया ।

कन्दर, खोह, नदी, नद, नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे॥
भालु, वाघ, वृक, केहरि, नागा। करहिं नाद सुनि धीरज भागा॥
दो०—भूमि-शयन वलकल वसन, असन कन्द, फल, मूल॥
ते कि सदा सब दिन मिलहिं, समय समय अनुकूल॥

नर-अहार रजनीचर करहीं। कपट-वेष वन कोटिन फिरहीं॥
लागे अति पहार कर पानी। विपिन विपति नहिं जात बखानी॥
व्याल कराल, विहँग मृग घोरा। निशिचर निकर नारि-नर चोरा॥
डरपहि धीर गहन-सुधि आये। मृगलोचनि ! तुम भीरु सुहाये॥
हंसगमनि तुम नहिं वन योगू। सुनि अपयश देहिहिँ मोहि लोगू॥
मानस-सलिल सुधा प्रतिपाली। जियहि कि लवन-पयोधि मराली॥
नव-रसाल-वन-विहरण-शीला। सोह कि कोकिल विपिन करीला॥
रहहु भवन अस हृदय विचारी। चन्द्रवदनि दुख कानन भारी॥
दो०—सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करै सिर मानि।
सो पछिताय अघाय उर, अवशि होहि हित हानि॥

पाठ ४०

वन जाने के समय सीताजी का रामचन्द्रजी से विनय करना।

(रामायण से)

मनोहर = मन को वश में करनेवाले
पी के = पति के
सी (सीय) = सीता
लोचन-नलिन = कमल के समान आँखें
सिख = उपदेश
दाहक = जलानेवाली
बिकल = बेचैन
सनेह (स्नेही) = प्रेम करनेवाले

बरबस = बरजोरी से, हठ से

बिलोचनबारी (वारि) = आँखों का पानी (आँसू)

अवनिकुमारी = पृथ्वी की लड़की (सीता)

कर = हाथ

छमब = माफ़ करोगी

अविनय = ढिठाई

प्राणपति = प्राणनाथ, स्वामी

परमहित = बहुत भला

वियोग = जुदाई

प्रेमरसपागी = प्रेम से भरे हुए

करुनायतन (करुणायतन) = दया के स्थान (दयालु)

सुखद = सुख देनेवाले

सुजान = अच्छी तरह जाननेवाले (चतुर)

कुमुद = कुमोदिनी, कुईं का फूल

बिधु = चन्द्रमा

सुरपुर = देवताओं का नगर (स्वर्ग)

भगिनी = बहन

परिवार = कुटुम्ब

सुहृद = मित्र

समुदाई (य) = झुंड

सुखदाई = सुख देनेवाला

नेह = प्रेम

तियहिं = स्त्री को

तरनि = सूर्य

शोक = रंज

(भूषन) = गहना

भार = बोझ

यमयातना = नरक का बड़ा भारी दुःख

बारी (वारि) = पानी

शरद बिमल बिधु बदन = शरद ऋतु के साफ़ चन्द्रमा के समान मुँहवाले

दुकूल = रेशमी कपड़ा

बल्कलवसन = छाल का कपड़ा

सुरसदन = देवताओं का घर

सम = बराबर

परनसाल (पर्णशाल) = पत्तों की कुटी

चारा = बर्ताव

किसलय = नये प

साथरी = आसनी, पत्तों का बिछौना

मनोज = मन से पैदा हुआ (कामदेव)

तुराई = बिछौना, शय्या

अमिय = अमृत

सौध = राजभवन

सरिस = समान

कोकी = कुमुदिनी

दिवस = दिन

विषाद = शोक, उदासी, दुख

परिताप = दुःख, कष्ट

घनेरे = अत्यन्त

लवलेश = थोड़ा भी, किंचित्

कृपानिधान = कृपा के घर, कृपा करनेवाले

करुनामय (करुणामय) = दयालु

अंतरजामी (अन्तर्यामी) = मन का हाल जाननेवाले (ईश्वर)
अवधि = हद तक (१४ बरस तक)
निधान = स्थान
हारी (हारि) = थकावट
सरोज = कमल
निहार (निहारि) = देख कर
जनित = उत्पन्न हुआ
श्रम = थकावट
हरिहौं = दूर करूँगी
पाय पखारि = पाँव धोकर
वायु करिहौं = पंखा डुलाऊँगी
मुदित मन = प्रसन्न चित्त से
श्रमकन (कण) = पसीने की बूँदें
पेख = देखने से
महि = धरती
डासी (डसि) = बिछाकर
पाँवपलोटना = पांव ाना
सब निशि = रात भर, सारी रात
जोही = देखकर
ताप = गरमी
शशक = खरहा
भोग = भोगविलास
बिलगान। = अलग होना, हट जाना
विषम वियोग = भारी जुदाई
पामर = नीच, अधम
राखहिं नहिं प्राना = मर जायगी
भानुकुल = सूर्यवंश
परिहरि = छोड़ कर
मनोरथ = मन की इच्छा
छोभा (क्षोभ) = पछतावा
छोह = प्रीति
आशिस = असीस
अचल = स्थिर
अहिवात = सौभाग्य

सुनि मृदु बचन मनोहर पी के। लोचन नलिन भरे जल सी के ॥
सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहिं सरद चाँदनी जैसे ॥
उतर न आव बिकल वैदेही। तजन चहत मोहि परम सनेही ॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरज उर अवनि कुमारी ॥
लागि सासु पग कह कर जोरी। छमब मातु बड़ि अविनय मोरी ॥
दीन्ह प्रानपति सिख मोहिं सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई ॥
मैं पुनि समुझि दीख मन माहीं। पिय वियोग सम दुख जग नाहीं ॥
अस कहि सिय रघुपति पद लागी। बोली बचन प्रेम रस पागी ॥

दो०—प्राननाथ ! करुनायतन !, सुन्दर ! सुखद ! सुजान ।
तुम बिन रघुकुल-कुमुद-बिधु, सुरपुर नरक समान ॥

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई । प्रिय परिवार सुहृद समुदाई ॥
सासु, ससुर, गुरु, सुजन सहाई । सुत सुन्दर सुशील सुखदाई ॥
जहँ लगि नाथ ! नेह अरु नाते । पिय बिनु तियहि तरनि ते ताते ॥
तनु धन धाम धरनि पुर राजू । पति विहीन सब सोक समाजू ॥
भोग रोग सम भूषण भारू । यम-यातना सरिस संसारू ॥
प्राननाथ तुम बिनु जगमाहीं । मोकहँ सुखद कतहुँ कछु नाहीं ॥
जिय बिनु देह नदी बिनु बारी । तैसहि नाथ ! पुरुष बिनु नारी ॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे । सरद विमल विधु वदन निहारे ॥

दो०—खग मृग परिजन नगर बन, बलकल विमल दुकूल ।
नाथ ! साथ सुर सदन सम, परनसाल सुख मूल ॥

बनदेवी बनदेव उदारा । करिहैं सासु ससुर सम चारा ॥
कुश-किसलय साथरी सुहाई । प्रभु सँग मञ्जु मनोज तुराई ॥
कन्द मूल फल अमिय अहारू । अवध सौध सुख सरिस पहारू ॥
छिन छिन प्रभुपद कमल विलोकी । रहिहौं दिवस मुदित जिमि कोकी ॥
बन दुख नाथ कहे बहुतेरे । भय विषाद परिताप घनेरे ॥
प्रभु वियोग लवलेस समाना । सब मिलि होहिं न कृपानिधाना ॥
अस जिय जानि सुजान सिरोमनि । लेइय संग, मोहिं छाँड़िय जनि ॥
बिनती बहुत करौं का स्वामी । करुनामय उर अन्तरजामी ॥

दो०—राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान ।
दीनबन्धु ! सुन्दर ! सुखद, शील सनेह निधान ॥

मोहिं मग चलत न होइहि हारी । छिन छिन चरन सरोज निहारी ॥

सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥
पाँय पखारि बैठि तरु छाँहीं। करिहौं वायु मुदित मन माहीं॥
श्रमकन सहित स्याम तनु देखे। का दुख समय प्रानपति पेखे॥
सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पांय पलोटिहि सब निशि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागहिं ताप बयारि न मोही॥
को प्रभु सँग मोहि चितवन हारा। सिंहबधुहिं जिमि शशक सियारा॥
मैं सुकुमारि नाथ बन योगू। तुमहिं उचित तप, मो कहँ भोगू॥
दो०—ऐसेहु बचन कठोर सुनि, जो न हृदय बिलगान।
तो प्रभु विषम वियोग दुख, सहिहैं पामर प्रान॥
अस कहि सीय विकल भइ भारी। बचन वियोग न सकी सँभारी॥
देखि दशा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखहि प्राना॥
कहेउ कृपाल भानुकुल नाथा। परिहरि सोच चलहु बन साथा॥
नहिं विषाद कर अवसर आजू। बेगि करहु बन गमन समाजू॥
तब जानकी सासु पग लागी। सुनिय मातु मैं परम अभागी॥
सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा॥
तजब छोभ जनि छांड़िय छोहू। करम कठिन कछु दोष न मोहू॥
सुनि सिय वचन सासु अकुलानी। दशा कवन बिधि कहौं बखानी॥
बारहिं बार लाइ उर लीन्हीं। धरि धीरज शिख आशिष दीन्हीं॥
अचल होय अहिवात तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा॥
दो०—सीतहिं सासु असीस सिख, दीन्ह अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदम सिर, अति हित बारहिं बार॥

॥ इति ॥